श्रमण

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी-५
जुलाई-दिसम्बर १९९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रधान संपादक
प्रो० सागरमल जैन

सम्पादक
डॉ० अशोक कुमार सिंह

सह सम्पादक
डॉ० शिव प्रसाद

वर्ष ४२ जुलाई-दिसम्बर १९९१ अंक ७-१२

प्रस्तुत अंक में

१. पंचपरमेष्ठि मन्त्र का कर्तृत्व और दशवैकालिक —साध्वी (डॉ०) सुरेखा श्री १
२ उच्चैर्नागर शाखा के उत्पत्ति स्थान एवं उमास्वाति के के जन्मस्थल की पहचान —प्रो० सागरमल जैन १७
३. सूडा सहेली की प्रेम कथा —भँवरलाल नाहटा २५
४. जैन सम्मत आत्म स्वरूप का अन्य भारतीय दर्शनों से तुलनात्मक विवेचन —डॉ० (श्रीमती) कमल पंत ३५
५. अपभ्रंश के जैन पुराण और पुराणकार —रीता विश्नोई ४५
६. कोटिशिला तीर्थ का भौगोलिक अभिज्ञान —डॉ० कस्तूरचन्द जैन ५७
७. उपकेशगच्छ का संक्षिप्त इतिहास —डा० शिवप्रसाद ६१
८. जैन जगत १८५
९. साहित्य सत्कार १८८

वार्षिक शुल्क
चालीस रुपये

एक प्रति
बीस रुपये

यह आवश्यक नहीं कि लेखक के विचारों से सम्पादक अथवा संस्थान सहमत हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचपरमेष्ठि मन्त्र का कर्तृत्व और दशवैकालिक

साध्वी (डॉ०) सुरेखा श्री*

जैन परम्परा में अनादि और शाश्वत के रूप में स्वीकृत पंच परमेष्ठि मन्त्र का कर्तृत्व एक महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय प्रश्न है। आधुनिक विद्वान् इसे सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्ति में उपलब्ध मानते हैं।[1] उनके अनुसार पहले अरिहन्त फिर सिद्ध की वन्दना का वर्तमान क्रम ही सदैव रहा हो यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।[2]

माहात्म्य के कारण इस मन्त्र को सर्वश्रुताभ्यंतर मानकर आवश्यक निर्युक्ति का अनुसरण करते हुए भी जिनभद्र ने इसे तीर्थंकर, गणधर-कृत स्वीकार किया है। दिगम्बर आचार्य वीरसेन ने इसे पुष्पदन्त कृत माना है। अभयदेव सूरि ने भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) के आरम्भ में उपलब्ध पंचनमस्कार मन्त्र को इस ग्रन्थ का आदि मानकर इस मन्त्र की टीका भी की है।

परन्तु इस मन्त्र का विवेचन सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्तिकार द्वारा ही किये जाने का अभिप्राय यह नहीं है कि इसके पूर्व यह मन्त्र अस्तित्व में नहीं था। इसके पूर्व भी प्रथम पद नमोअरहन्ताणं, मनोराव्यसिद्धानं के उल्लेख अवश्य प्राप्त होते हैं।[3]

प्रस्तुत लेख में हम मूल सूत्र दशवैकालिक के सन्दर्भ में पंचपरमेष्ठि मन्त्र के रचनाकाल और कर्तृत्व का विवेचन करेंगे। दशवैकालिक की रचना महावीर के पश्चात् चतुर्थ पट्टधर और चतुर्दश पूर्वधर आर्य शय्यंभव ने की है। इस ग्रन्थ के पंचम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में उपलब्ध

१. पण्णवणा—सं० पुण्यविजय, द्वि० खं० प्रस्तावना पृ० २६, प्रका० महावीर जैन विद्यालय बम्बई

२. वही, पृ० २६

३ वही, पृ० २८

* एल० डी० इन्स्टीट्यूट आफ इण्डोलॉजी, अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निम्न उद्धरण—नमोक्कारेण पारेत्ता करेत्ता जिणसंथवं।[1] (अनुष्टुप छंद) अर्थात् (इस चिन्तनमय कायोत्सर्ग को) नमस्कार-मंत्र द्वारा पूर्ण (पारित) कर जिन-संस्तवन (तीर्थङ्कर-स्तुति) करें के परिप्रेक्ष्य में पंचपरमेष्ठि मन्त्र की प्राचीनता और कर्तृत्व का विवेचन करेंगे, जिनमें नमोक्कार मन्त्र का स्पष्ट उल्लेख किया गया है—चूर्णिकार जिनदास महत्तर (वि० सं० ६५०-७५०) ने इसके हार्द को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"नमोक्कारेण = "नमो अरिहन्ताणं" ति एतेण नमोक्कारेण काउस्सग्गं उस्सारेत्ता जिण संथवो 'लोगस्स उज्जोअगरे' भन्नइ"।[2] दशवैकालिक के दूसरे चूर्णिकार अगस्त्य सिंह स्थविर भी अपनी चूर्णि में यही मन्तव्य प्रकट करते हैं—

"नमोक्कारेण पारेत्ता। 'नमो अरहंताणं' ति एतेण वयणेण काउस्सग्गं पारेत्ता जिणसंथवो लोगुज्जोवकरो तं करेत्ता"[4] अर्थात् 'नमो अरिहन्ताणं' इस वचन के द्वारा कायोत्सर्ग पार करके (पूर्ण करके) जिन-स्तवन 'लोगस्स उज्जोअगरे' कहे।

वृत्तिकार हरिभद्र सूरि ने भी यही अभिप्राय व्यक्त किया है—" 'नमोक्कारेण' त्ति सूत्रं, नमस्कारेण पारयित्वा 'णमो अरिहंताण[2]-मित्यनेन, कृत्वा जिनसंस्तवं 'लोगस्सुज्जोअगरे' इत्यादि रूपं"।[5]

इसको दीपिकाकार समयसुन्दर गणि की व्याख्या भी अपने पूर्ववर्ती आचार्यों से साम्य रखती है—"नमस्कारेण 'नमो अरिहन्ताणमिति कथन रूपेण कायोत्सर्गं पारयित्वा ·· ।"[6]

इस प्रकार दोनों चूर्णिकार, वृत्तिकार, दीपिकाकार तथा वृत्ति पर वृत्तिकर्त्ता श्रीमत्सुमति साधुसूरि[7] सभी ने नमस्कार से 'नमोअरि-

१. दशवैकालिक, पंचम अध्ययन, प्रथम उद्दे०, गा० १२४ प्रका० श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर (राज०)
२. वही, अनुवाद, गाथा १२४, पृ० २००
३. दश० चूर्णि (जिनदास महत्तर) पत्र-१८९
४. दश० चूर्णि (अगस्त्यसिंह स्थविर) पत्र-१९१
५. दश० हारिभद्रीय वृत्ति, पत्र-१८०
६. दीपिका (समयसुन्दर गणि कृत) पत्र-३९
७. हारिभद्रीयवृत्त्योपरि वृत्ति (सुमतिसाधु सूरि) पत्र-७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हन्ताणं' नमस्कार मंत्र के प्रथम पद को ग्रहण किया है। इससे इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि दशवैकालिक रचना के समय नमस्कार मंत्र की रचना हो चुकी होगी।

दशवैकालिक सूत्र की रचना एवं विषय वस्तु के सम्बन्ध में निर्युक्तिकार का कथन महत्त्वपूर्ण है। अपने पुत्र-मुनि 'मणग' के आत्मकल्याणार्थ पूर्व-श्रुत से उद्धार करके इस सूत्र की रचना की गई है। वे आगे कहते हैं कि इसका चतुर्थ अध्ययन आत्मप्रवाद पूर्व से, पाँचवाँ अध्ययन कर्मप्रवाद पूर्व से, सातवाँ अध्ययन सत्यप्रवाद पूर्व से, अवशेष सभी अध्ययन प्रत्याख्यान पूर्व की तृतीय वस्तु से उद्धृत किये गये हैं।[1] अगली गाथा में निर्युक्तिकार ने दशवैकालिक का निर्गूहण गणिपिटक द्वादशाँगी से किया गया, ऐसा कहा है।[2]

निर्युक्ति के आधार पर चौदह पूर्व अथवा द्वादशांगी इन दोनों श्रुत में से अथवा किसी एक से भी दशवैकालिक का निर्गूहण माना जाय तो भी सूत्र रूप से इसके गुम्फन का श्रेय गणधर भगवन्तों को तथा अर्थरूप से उपदेशक अरिहन्त भगवन्त को जाता है।[3]

महावीर के चौथे पट्टधर शय्यंभवसूरि चतुर्दश पूर्वधर थे। उन्होंने तृतीय पट्टधर प्रभवसूरि के पास चौदह पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया था। श्रुतधर परम्परा में वे द्वितीय श्रुतधर थे। वीर निर्वाण संवत् ६४ में उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। उसके ८ वर्ष पश्चात् इसकी रचना की थी। परिशिष्ट पर्व में उल्लिखित है कि दशपूर्वी विशेष परिस्थिति में ही पूर्वों से आगम-निर्गूहण का कार्य करते हैं।[4] चतुर्दश पूर्वधर शय्यंभव

१. आयप्पवायपुव्वा निज्जूढा होइ धम्मपन्नत्ती।
कम्मप्पवायपुव्वा पिंडस्स उ एसणा तिविहा॥
सच्चप्पवायपुव्वा निज्जूढा होइ वक्कसुद्धी उ।
अवसेसा निज्जूढा नवमस्स उ तइयवत्थुओ॥
दशवै० निर्युक्ति, गा० १६-१७

२. बीओऽवि आएसो गणि पिडगाओ दुवालसंगाओ।
एउनं किर निज्जढं मणगस्स अणुग्गहट्ठाए॥ वही, गा० १८

३. विशेषावश्यक भाष्य, गा० ११८१

४. परिशिष्ट पर्व, सर्ग-५, गा० ८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरि ने वीर निर्वाण सं० ७२ में इस सूत्र की रचना की, ऐसा ऐतिहासिक दृष्टि से प्रतीत होता है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से कुछ मन्तव्य हमारे सम्मुख आते हैं जो इस प्रकार हैं—

१. प्रवाद अर्थात् पूर्वों के आधार पर दशवैकालिक की रचना होने की स्थिति में 'नमुक्कारेण पारेत्ता करेत्ता जिण संथवं' यह भी पूर्व से ही उद्धृत होना चाहिये था।

२. यदि यह गणिपिटक द्वादशांगी से भी उद्धृत हो तो सूत्र रूप से इसे गणधर भगवन्तों द्वारा ग्रथित माना जा सकता है।

३. दशवैकालिक में 'नमुक्कारेण पारेत्ता' द्वारा नमस्कार मन्त्र के उद्धरण से स्पष्ट है कि शय्यंभव सूरि के समय तक मंत्र का विकास हो चुका था।

४. इस ग्रंथ की रचना के समय वीर निर्वाण सं० ७५ में निर्वाण प्राप्त करने वाले जम्बूस्वामी के शिष्य प्रभव स्वामी भी विद्यमान थे। इन्होंने पंचम गणधर सुधर्मा स्वामी के पट्टधर अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के साथ ही प्रव्रज्या ग्रहण की थी। इस प्रकार सुधर्मा से ही जम्बूस्वामी तथा प्रभवस्वामी ने तथा प्रभवस्वामी से शय्यंभवसूरि ने परम्परागत श्रुत ग्रहण किया था। इस स्थिति में उस समय तक मन्त्र अपना वर्तमान स्वरूप पंचपरमेष्ठि न भी ग्रहण किया होगा तो भी इसका प्रथम पद अस्तित्व में आ चुका था।

अन्य मूल सूत्र आवश्यक के अन्तर्गत 'अन्नत्थ सूत्र' में भी निर्देश प्राप्त होता है कि—'जाव अरिहन्ताणं भगवंताणं णमोक्कारेणं ण पारेमि ताव....[2]'। जब तक अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार न कर लूँ तब तक...। यहाँ भी अरिहन्त भगवन्त को नमस्कार का संकेत हमें प्राप्त होता है। चूर्णिकार इस मन्तव्य को अधिक स्पष्ट करते हैं—

"जथा सामाइए अरहंता जथा नमोक्कारे भगवंतो जथा पेढियाए पूजावचनमेतत् नमोक्कारो पुव्ववण्णितो, पारणितं वा पालणंति वा पारगमणंति वा एगहा, तस्स परिमाणे असमत्ते जदि उस्सारेति ण पालितं

१. दश० हारिभद्रीय वृत्ति-पत्र ११ १२.
२. आवश्यक सूत्र, भाग-२ पत्र २५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवति, तम्हा पुण्णे वत्तव्वा णमो अरिहन्ताणं" ।[१] चूर्णिकार ने भी नमोक्कार से 'णमो अरिहन्ताणं' पद द्वारा कायोत्सर्ग पूर्ण करने का अभिप्राय ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त 'शक्रस्तव' (नमुत्थुणं) सूत्र में भी सर्वप्रथम 'अरिहन्ताणं भगवन्ताणं' उच्चारण द्वारा नमस्कार किया गया है। 'चतुर्विंशति स्तव' (लोगस्स सूत्र) में चतुर्विंशति तीर्थङ्करों की स्तुति में अरिहन्तों का कीर्तन किया गया है।[२]

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'नमस्कार-मंत्र' की रचना सूत्र रूप में गणधर कृत मानी जा सकती है। साथ ही सिद्धापेक्षा उपकारी व निकट होने से प्रथम नमस्कार व प्रथम पद अरिहन्त को दिया गया है, यह भी स्पष्ट हो जाता है।

दशवैकालिक सूत्र में 'आचार-प्रधान' ग्रंथ होने से श्रमण जीवन सम्बन्धित आचार-धर्म की प्ररूपणा है। पंच-पद का मंत्र रूप से वर्णन इसमें नहीं है इनका उल्लेख इसमें अवश्य मिलता है। "नऽन्नत्थ आरहंतेहिं हेऊहिं आयारमहिट्ठेज्जा" अर्थात् अर्हन्त हेतुओं के सिवाय अन्य किसी हेतु (उद्देश्य) को लेकर आचार का पालन नहीं करना चाहिए।[३]

'अरिहन्त' शब्दमात्र से तो उल्लेख एक बार प्राप्त होता है किंतु 'चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने इस प्रकार से प्ररूपणा की है' यह उल्लेख अन्य कई स्थलों पर किया गया है।[४]

पंचपरमेष्ठि मन्त्र के दूसरे पद 'नमो सिद्धाणं' का प्रश्न है इसका इस रूप में उल्लेख नहीं है। परन्तु इसमें सिद्धत्व की अर्हता और उपाय का निरूपण है। उल्लिखित है कि दुष्कर का आचरण करके तथा दुःसह को सहन करके कितने नीरज (कर्मरज से रहित) होकर सिद्ध हो जाते हैं।[५] सिद्धिमार्ग को प्राप्त (स्व-पर के) त्राता, संयम

१. आवश्यक सूत्र, भाग-२, पत्र २५३
२. वही, पत्र ३
३. दश० अध्ययन-९।४ गा० ११
४. दश० ४।१-३, ९।४।१, ९।४।२
५. वही, ३।१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तप के द्वारा पूर्वकृत कर्मों का क्षय करके परिनिवृत्त हो जाते हैं।[१]

सिद्ध पद की सामर्थ्य किसमें है ? अर्थात् सिद्ध-पद के योग्य कौन हैं—'सदा उपशान्त, ममत्व रहित, अकिंचन, सविज्ञ, अध्यात्म विद्या के अनुगामी, जगत् के जीवों के त्राता और यशस्वी साधक शरद् ऋतु के निर्मल चंद्रमा के समान सर्वथा विमल (कर्म-मल से रहित) होने पर सिद्धि अथवा विमानों को प्राप्त करते हैं।'[२] 'जन्म-मरण से मुक्त नरक आदि सब पर्यायों को सर्वथा त्याग देने वाला शाश्वत (अजर-अमर) सिद्ध हो जाता है।'[३]

सिद्धत्व की प्रथम शर्त है कर्म-क्षय। कर्म-क्षय हेतु कथन है—'दुष्ट भावों से आचरित तथा दुष्पराक्रम से अर्जित पूर्वकृत पापकर्मों का फल भोग लेने पर ही मोक्ष होता है। बिना भोगे मोक्ष नहीं होता अथवा तप के द्वारा (उन पूर्व कर्मों का) क्षय करने पर भी मोक्ष होता है।'[४] मोक्ष का अधिकारी कौन नहीं है ? कहा गया है कि—'जो मनुष्य चण्ड (क्रोधी) है, जिसे अपनी बुद्धि और ऋद्धि का गर्व है, जो पिशुन (चुगलखोर) है, जो (अयोग्य कार्य में) साहसिक है, जो गुरु-आज्ञा-पालन से हीन है, जो धर्म से अदृष्ट (अनभिज्ञ) है, जो विनय में निपुण नहीं है, जो संविभागी नहीं है, उसे कदापि मोक्ष प्राप्त नहीं होता।'[५]

मोक्ष का हेतु क्या है ? वह कौन-सा उपाय है जिससे सिद्धत्व सिद्ध होता है ? 'धर्म का मूल विनय है और उस धर्म रूपी वृक्ष का परम अंतिम अथवा उत्कृष्ट-रस युक्त फल मोक्ष है। विनय के द्वारा कीर्ति, श्रुत तथा निःश्रेयस की प्राप्ति होती है।[६] आत्म-शुद्धि द्वारा विकास के आरोह-क्रम का वर्णन सुन्दर रीति से प्रस्तुत करते हुए, अणगार धर्म से सिद्धि-गति में सिद्धत्व प्राप्त होने की प्रक्रिया का निरूपण किया

---

१. दशवैकालिक ३।१५
२. वही, ६।६८
३. वही, ९।४।१४
४. वही, प्रथम चूलिका गा० १८
५. दश० ९।२।२२
६. वही ९।२।२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है। पुण्य-पापादि के ज्ञान से शाश्वत सिद्धत्व तक की श्रेणी का आरोहण किस प्रकार होता है ? इसका भी उल्लेख किया गया है।[१]

'पंचपरमेष्ठि' मन्त्र के तृतीय पद 'नमो आयरियाणं' के आचार्य पद का निरूपण इस प्रकार किया गया है—'ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न, संयम और तप में रत, आगम-संपदा से युक्त गणिवर्य (आचार्य) हैं।'[२] आचार्य की महिमा बतायी गई है—'जैसे रात्रि के अत (दिवस के प्रारंभ) में प्रदीप्त होता हुआ (जाज्वल्यमान) सूर्य (अपनी किरणों से) सम्पूर्ण भारत (भरत क्षेत्र) को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार आचार्य श्रुत, शील, प्रज्ञा से (विश्व के समस्त जड़-चैतन्य पदार्थों के) भावों को प्रकाशित करते हैं। जैसे देवों के मध्य इंद्र सुशोभित होता है वैसे ही आचार्य भी साधुओं के मध्य में सुशोभित होते हैं—'मेघों से युक्त अत्यन्त निर्मल आकाश में कौमुदी के योग से युक्त नक्षत्र और तारागण से परिवृत्त चंद्रमा सुशोभित होता है उसी भाँति गणि (आचार्य) भी भिक्षुओं के बीच सुशोभित होते हैं।'[३]

आचार्य की आराधना तथा आराधना से प्राप्त फल का उल्लेख इस प्रकार है—'अनुत्तर (सर्वोत्कृष्ट ज्ञानादि) गुणरत्नों की सम्प्राप्ति का इच्छुक तथा धर्मकामी (निर्जरा-धर्माभिलाषी) साधु (ज्ञानादि रत्नों के) महान् आकर (खान) समाधियोग तथा श्रुत, शील और प्रज्ञा से सम्पन्न महर्षि आचार्यों की आराधना करे तथा उनको (विनय भक्ति से सदा) प्रसन्न रखे। मेधावी साधु (पूर्वोक्त) सुभाषित वचनों को सुनकर अप्रमत्त रहता हुआ आचार्य की सुश्रूषा करें।[४] इस प्रकार वह अनेक गुणों की आराधना करके अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त करता है।'

जिस प्रकार अहिताग्नि (अग्निहोत्री ब्राह्मण) अग्नि की शुश्रूषा करता हुआ जागृत रहता है उसी प्रकार जो आचार्य की शुश्रूषा में जागृत रहता है, उनके आलोकित एवं इंगित (दृष्टि एवं चेष्टा) को

---

१. दश० ३।३९–४८
२. वही, ६।१
३. वही ९।१।१४–१५
४. वही, ९।१।१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानकर उनके अभिप्राय की आराधना करता है वही पूज्य होता है।[१] आचार्य सम्मत गुणों का भी अनुपालन करना चाहिये।[२]

अल्पवयस्क आचार्य की अवहेलना के परिणाम कैसे भयंकर होते हैं, इसका सोदाहरण कथन है : 'जो कोई सर्प को छोटा बच्चा है' जानकर उसकी आशातना (कदर्थना) करता है, वह (सर्प) उसके अहित के लिए होता है। इसी प्रकार (अल्पवयस्क) आचार्य की अवहेलना करने वाला मंदबुद्धि भी संसार में जन्म-मरण के पथ पर गमन (परिभ्रमण) करता है।'[३] 'अत्यन्त क्रुद्ध आशीविष सर्प तो जीवन नाश से अधिक क्या कर सकता है ? परन्तु अप्रसन्न हुए पूज्य-पाद आचार्य तो अबोधि के कारण बनते हैं (जिससे आचार्य की) आशातना से मोक्ष नहीं है।'[४] 'कदाचित् वह प्रचण्ड अग्नि उसे न जलाए अथवा कुपित आशीविष सर्प भी उसे न डसे, हलाहल विष भक्षण से भी न मरे, किन्तु आचार्यहीलना (आचार्य निन्दा) से कदापि मोक्ष संभव नहीं है।[५]

आचार्य की भांति उपाध्याय भी पूज्य हैं, समतुल्य हैं। उपाध्याय का विनय, सेवा, आज्ञापालन, आचार्य के अनुरूप करना चाहिये, इसका स्पष्ट कथन है। जो साधक आचार्य और उपाध्याय की सेवा शुश्रूषा करते हैं, उनके वचनों का पालन करते हैं, उनकी शिक्षा भी उसी प्रकार बढ़ती है, जिस प्रकार जल से सींचे हुए वृक्ष बढ़ते हैं।[६]

आचार प्रधान ग्रन्थ होने से इस सूत्र में साध्वाचार का ही वर्णन है। समग्र ग्रन्थ रचना ही साधुत्व को लक्ष्य में रखकर की गई है। क्योंकि अध्यात्म विकास का प्रथम सोपान ही संयमी जीवन है, अतः श्रमणत्व ही इस ग्रन्थ का केन्द्र बिन्दु है। संयत, मुनि, भिक्षु, श्रमण, त्यागी ये सब साधु की ही पर्यायें हैं। किंतु पंच पदों में साधु-शब्द होने

१. दशवैकालिक ९।३·१, ९।१·११
२. वही, ८।६०
३. वही, ९।१।४
४. वही, ९।१।५, ९।१।१०
५. वही, ९।१।६
६. वही, ९।२।१२, ९।२।१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से इस ग्रंथ में साधु शब्दोल्लेख को दृष्टिपथ में लायेंगे। ग्रन्थ का प्रारंभ मुनि जीवन की चर्या को मधुकर के सदृश कहकर करते हैं कि जिस प्रकार भ्रमर वृक्षों के पुष्पों में से थोड़ा-थोड़ा रस पीता है तथा पुष्प को पीड़ा नहीं पहुँचाता और वह अपने आपको तृप्त कर लेता है, उसी प्रकार लोक में जो परिग्रह से मुक्त साधु हैं, वे दान-भक्त की एषणा में रत रहते हैं, जैसे भौंरे फूलों में। इन गुणों के कारण वे साधु कहलाते हैं।[१] जिनका आत्मा संयम में सुस्थिर है, जो बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से विमुक्त हैं तथा जो (स्व-पर के) त्राता हैं।[२] त्यागी वही कहलाता है जो कान्त (कमनीय-चित्ताकर्षक) और प्रिय भोग उपलब्ध होने पर भी (उनकी ओर से) पीठ फेर लेता है और स्वाधीन रूप से प्राप्त भोगों का स्वेच्छा से त्याग करता है।[३] साधु कैसा हो? उसके लिए कहा है—जो ज्ञात पुत्र (श्रमण भगवान् महावीर) के वचनों में रुचि (श्रद्धा) रखकर षट्कायिक जीवों को आत्मवत् मानता है, जो पंच महाव्रतों का पालन करता है, जो पांच आस्रवों का संवरण करता है, वह सद्भिक्षु है।[४] साधु है या असाधु, इसकी जानकारी हेतु आलेखन है कि गुणों से साधु होता है और अगुणों (दुर्गुणों) से असाधु! इसलिए साधु के योग्य गुणों को ग्रहण कर और असाधु गुणों को छोड़। आत्मा को आत्मा से जानकर जो राग-द्वेष में सम (मध्यस्थ) रहता है, वही पूज्य है।[५]

लोक में बहुत से असाधु को साधु कहते हैं किन्तु असाधु को–'यह साधु है' इस प्रकार न कहें। अपितु साधु को ही यह साधु है, इस प्रकार कहें। ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न तथा संयम और तप में रत, इस प्रकार के सद्गुणों से समायुक्त संयमी को ही साधु कहें।[६] साधुओं के साथ ही परिचय करें।[७]

---

१. दशवैकालिक १।२–५
२. वही, ३।१
३. वही, २।३
४. वही, १०।५
५. वही, ९।३·११
६. वही, ७।४८–४९
७. वही, ८।५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार इस ग्रंथ में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पंच पदों का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। पंचम पद—साधु पद अन्य सभी पदों में व्याप्त है। क्योंकि साधु ही उपाध्याय, आचार्य अरिहन्त एवं सिद्ध के स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। नमस्कार मंत्र अथवा पंच पदों का विवेचन ही इस ग्रंथ का विषय हो, ऐसी प्रतीति सहज ही हो जाती है।

पं० दलसुख भाई ने अंग आगम के पश्चात् किसी समय इसकी रचना मानी है जो सम्पन्न प्रतीत होता है।[१]

●

१. व्यक्तिगत चर्चा के आधार पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल अर्धमागधी के स्वरूप की पुनर्रचना

[Reconstruction of the Original Ardhamāgadhī Prākrit]

डॉ० के० आर० चन्द्र*

आचारांग के प्रथम श्रुत-स्कंध के चौथे अध्ययन के प्रथम उद्देशक में अहिंसा धर्म के विषय में भगवान महावीर का उपदेश इस प्रकार है—

सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा, न अज्जावेतव्वा, न परिघेत्तव्वा, न परितावेयव्वा, न उद्‌वेयव्वा।

अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए और न ही उसे किसी भी प्रकार से पीड़ित करना चाहिए।

यही शुद्ध, नित्य और शाश्वत धर्म है जो आत्मज्ञों के द्वारा उपदिष्ट है। इसी बात को अर्धमागधी भाषा में विभिन्न संस्करणों में निम्न प्रकार से संपादित किया गया है—

शुब्रिंग—(१.४.१.)

एस धम्मे सुद्धे नितिए सासए समेच्च लोगं खेयन्नेहिं पवेइए।

आगमोदय—(१.४.१.१२६)

एस धम्मे सुद्धे निइए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।

जैन विश्वभारती—(१.४.१.२)

एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।

म० जै० विद्यालय—(१.४.१.१३२)

एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए समेच्च लोयं खेतण्णेहिं पवेदिते।

इन चारों पाठों में जो जो शब्द प्रयुक्त हैं उनमें से निम्न शब्द-रूप एक समान नहीं है—

---

*अध्यक्ष, प्राकृत एवं पालि विभाग, गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	शुब्रिंग	आगमो०	जैविभा०	म०जै०वि०
१.	नित्य = नितिए	निइए	णिइए	णितिए
२.	समेत्य = समेच्च	समिच्च	समिच्च	समेच्च
३.	लोकम् = लोगं	लोयं	लोयं	लोयं
४.	क्षेत्रज्ञैः = खेयन्नेहिं	खेयण्णेहिं	खेयण्णेहिं	खेतण्णेहिं
५.	प्रवेदितः = पवेइए	पवेइए	पवेइए	पवेदिते

स्पष्ट है कि अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार (न कि प्राकृत भाषा के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से और न ही समय, क्षेत्र और उपदेशक की वाणी के स्वरूप को ध्यान में लेकर) और प्राकृत व्याकरणकारों के नियमों के प्रभाव में आकर (जो न तो काल की दृष्टि से ऐतिहासिक हैं और न अर्धमागधी भाषा की विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं) अलग-अलग पाठों को स्वीकार किया है जिसके कारण शब्दों की वर्तनी में कितना अन्तर आया है और यह अन्तर क्यों आया उसे ही यहाँ पर समझना आवश्यक है।

किसी संपादक ने संयुक्त व्यंजन के पहले ए का इ कर दिया है, समिच्च (समेच्च); किसी ने त का, तो किसी ने द का लोप कर दिया है, नितिए, निइए; पवेदिते, पवेइए, किसी ने प्रारंभिक न का ण कर दिया, नितिए, णिइए, णितिए; किसी ने क का लोप किया, किसी ने क का ग कर दिया, लोयं, लोगं; किसी ने ज्ञ का न्न, तो किसी ने ज्ञ का ण्ण कर दिया, खेयन्न, खेयण्ण; किसी ने त्र का त किया तो किसी ने त्र का य किया अथवा किसी ने द (खेदज्ञ से) का त किया तो किसी ने द का य कर दिया है। इस प्रकार के परिवर्तनों से ऐसा मालूम होता है कि हरेक संपादक की अर्धमागधी भाषा के विषय में अलग अलग धारणा बनी हुई है। इसका मुख्य कारण यही है कि अर्धमागधी भाषा का व्याकरण किसी भी व्याकरणकार ने स्पष्टतः दिया ही नहीं है।

इन सभी परिवर्तनों पर विचार किया जाय और उनकी समीक्षा तथा आलोचना की जाय तो अवश्य कुछ न कुछ समझ में आएगा कि इस प्रकार की विभिन्नता कैसे आ गयी। इन ध्वनि-गत परिवर्तनों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पवेदित' शब्द में किसी को पालि भाषा का आभास होता होगा इसलिए पवेदिअ ही स्वीकारना उचित लगा हो, अथवा 'खेतण्ण' और 'नितिय' में 'त' श्रुति की शंका हो गई हो इसलिए 'खेयण्ण' और 'निइय' ही स्वीकार किया गया हो अथवा प्रायः लोप के नियम से प्रेरित होकर त और द का लोप करना उचित मानकर पवेइअ को स्वीकार किया हो और ज्ञ का न्न अयोग्य समझकर व्याकरण के नियम से ण्ण कर दिया गया हो।

इन स्वीकृत पाठों में पालि भी है—पवेदित, पालि और अर्धमागधी भी है—समेच्च, अर्धमागधी भी है—लोगं, और महाराष्ट्री भी है—लोयं, णिइए, खेयण्ण। दूसरी ओर अशोक के समय की पूर्वी क्षेत्र की विशेषता भी है—लोगं, नितिए, और (खेय) न्ने (हिं) में। इस प्रकार के विश्लेषण से यह तो भाषाओं की खिचड़ी हो ऐसा प्रकट होता है।

हरेक सम्पादक के पास जो सामग्री थी उनमें पाठान्तर भी मौजूद थे परंतु उनमें से अमुक पाठान्तर को छोड़ दिया गया जो वास्तव में भाषा की प्राचीनता को संजोए हुए था। उदाहरणार्थ—

शुब्रिंग महोदय द्वारा उपयोग में ली गयी सामग्री में से चूर्णि और 'जी' संज्ञक प्रत में 'खेत्तन्नेहिं' पाठ उपलब्ध था, जैन विश्व भारती की 'च' संज्ञक प्रत में 'खेत्तन्नेहिं' पाठ और म० जै० वि० के संस्करण में उपयोग में ली गई चूर्णि में 'खित्तण्ण' पाठ था। तब फिर 'खेत्तन्न' शब्द को मूल रूप में नहीं अपना कर खेयन्न या खेयण्ण क्यों अपनाया गया जब भाषाकीय विकास की दृष्टि से ये दोनों ही परवर्ती हैं—खेयन्न प्रथम और तत्पश्चात् खेयण्ण।

शुब्रिंग महोदय ने मात्र एक ही रूप 'खेयन्न' को आचारांग (प्रथम श्रुतस्कंध) में सर्वत्र अपनाया है परंतु जै०वि०भा० के संस्करण में खेयण्ण भी मिलता है, आगमोदय समिति के संस्करण में खेयण्ण भी मिलता है और म०जै०वि० के संस्करण में खेयण्ण, खेतण्ण और खेत्तण्ण तो मिलते हैं परंतु खेयन्न नहीं मिलता है। इस शब्द का संस्कृत रूप क्षेत्रज्ञ है जिसका अर्थ है 'आत्मज्ञ' और इस खेयन्न का परवर्ती काल में टीकाकारों ने 'खेदज्ञ' के साथ जो संबंध जोड़ा है वह गलत है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(भाषा को न समझने से भ्रान्ति के कारण) कृत्रिम परिभाषा देकर उसे तोड़ मरोड़ कर समझाने का प्रयत्न किया गया है, जिससे तुरन्त मध्यवर्ती द का लोप और य श्रुति से द का य हो जाता है। यह तो मात्र = माय और पात्र = पाय जैसा परिवर्तन है और आत्म = आत्त = आत = आय जैसा विकास है। अतः क्षेत्रज्ञ में च के स्थान पर 'द' लाने की जरूरत नहीं थी। प्राचीन प्राकृत भाषा में त्र का त्त ही हुआ था न कि 'त' या 'य'। अशोक के पूर्वी क्षेत्र के शिलालेखों में ज्ञ का ञ्ञ है न कि 'ण्ण'। सामान्यतः ञ्ञ का ण्ण ई०स० के बाद में प्रचलन में आया है और वह भी दक्षिण और उत्तर-पश्चिम क्षेत्र से न कि पूर्वी क्षेत्र से। ञ्ञ = ण्ण पूर्णतः महाराष्ट्री प्राकृत की ध्वनि है न कि पालि, मागधी, पैशाची या शौरसेनी की। अतः अर्धमागधी में न्न = ण्ण का प्रयोग करना जबरदस्ती से या जाने अनजाने उसे महाराष्ट्री भाषा में बदलने के समान है और क्या यह मूल अर्धमागधी भाषा के लक्षणों की अनभिज्ञता के कारण ही ऐसा नहीं हो रहा है? शुब्रिंग महोदय ने ज्ञ के लिए सर्वत्र न्न ही अपनाया है परंतु त्र के स्थान पर य को स्थान देकर तथा त्त का त्याग करके उन्होंने अनुपयुक्त पाठ अपनाया है। वे स्वयं भी खेदज्ञ शब्द से प्रभावित हुए हों ऐसा लगे बिना नहीं रहता। उन्होंने नित्य के स्थान पर नितिय अपनाया है वह प्राचीन भी है और बिलकुल उचित भी है, निइय और णिइय तो बिलकुल कृत्रिम है और मात्र मध्यवर्ती त के लोप का अक्षरक्षः पालन किया गया हो ऐसा लगता है। पिशल के व्याकरण में न तो नितिय शब्द मिलता है और न ही णिइय, निइय। प्राचीन शिलालेखों में और प्राचीन प्राकृत में पहले स्वरभक्ति का प्रचलन हुआ जैसे—क्य = किय, त्य = तिय, व्य = विय, इत्यादि और बाद में ऐसे संयुक्त व्यंजनों में समीकरण आया है। समेच्च के बदले में समिच्च अर्थात् ए के स्थान पर इ का प्रयोग (संयुक्त व्यंजनों के पहले) भी न तो सर्वत्र मिलेगा और न ही प्राचीनता का लक्षण है। क = ग के प्रयोगों से अर्धमागधी साहित्य भरा पड़ा है। क का ग भी पूर्वी क्षेत्र का (अशोक के शिलालेख) लक्षण है। क का लोप महाराष्ट्री का सामान्य लक्षण है और यह लोप की प्रवृत्ति काफी परवर्ती है। पवेदित में से द और त का लोप भी परवर्ती प्राकृत का लक्षण है। शौरसेनी और मागधी में तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द यथावत् भी रहता है और पालि तथा पैशाची में त। अर्धमागधी का सम्बन्ध मागधी से अधिक है न कि महाराष्ट्री से। उसका मागधी शब्द ही उसे प्राचीनता का अधिकार देता है और इस दृष्टि से जैन आगमों के प्राचीन अंशों में जो जो प्राचीन रूप (नामिक, क्रियापदिक तथा कृदंत) मिलते हैं वे उसे पालि भाषा के नजदीक ले जाते हैं न कि महाराष्ट्री प्राकृत के निकट।

मूलतः अर्धमागधी भाषा मागधी और महाराष्ट्री का मिश्रण नहीं था यह तो परवर्ती प्रक्रिया है।

इस चर्चा का उपरोक्त वाक्य यदि भगवान महावीर के समय का है, उनके मुख से निकली हुई वाणी है या उनके गणधरों द्वारा उसे भाषाकीय स्वरूप दिया है तब तो उसका पाठ होना चाहिए—

एस धम्मे सुद्धे नितिए सासते[1] समेच्च लोगं खेत्तन्नेहि[2] पवेदिते।

और यदि यह वाणी भगवान महावीर के मुख से प्रसृत नहीं हुई है या गणधरों की भाषा में प्रस्तुत नहीं किया गया है या ई० पू० चतुर्थ शताब्दी की प्रथम वाचना का पाठ नहीं है परंतु तीसरी और अन्तिम वाचना में पूज्य देवर्धिगणि (पाँचवीं छठी शताब्दी) के समय में इसे अन्तिम रूप दिया गया हो या उन्होंने ही श्रुत की रचना की हो तब तो हमारे लिए चर्चा का कोई प्रश्न ही नहीं बनता है और जो भी पाठ जिसको अपनाना है वह अपना सकता है।

●

१-२ [तृतीयाबहुबचन की विभक्ति 'हि' के बदले 'हिं' भी परवर्ती है। सासते में से त का लोप भी अयोग्य लगता है। इन दोनों को अभी तो सामग्री (पाठान्तरों) के अभाव में प्रमाणित नहीं किया जा सकता; परंतु आशा है कि ऐसे पाठान्तर भी शोध करने पर मिल सकते हैं।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चैर्नागर शाखा के उत्पत्ति-स्थल एवं उमास्वाति के जन्म-स्थल की पहचान

—प्रो० सागरमल जैन

तत्त्वार्थसूत्र के प्रणेता उमास्वाति ने तत्त्वार्थ-भाष्य की अन्तिम प्रशस्ति में अपने को उच्चैर्नागर शाखा का कहा है तथा अपना जन्म-स्थान न्यग्रोधिका बताया है। प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य उच्चैर्नागर शाखा के उत्पत्ति-स्थल एवं उमास्वाति के जन्म-स्थल का अभिज्ञान (पहचान) करना है। उच्चैर्नागर शाखा का उल्लेख न केवल तत्त्वार्थ-भाष्य[१] में उपलब्ध होता है, अपितु श्वेताम्बर परम्परा में मान्य कल्पसूत्र की स्थविरावली[२] में तथा मथुरा के अभिलेखों[३] में भी उपलब्ध होता है। कल्पसूत्र स्थविरावली के अनुसार उच्चैर्नागर शाखा कोटिकगण की एक शाखा थी। मथुरा के २० अभिलेखों में कोटिकगण तथा नौ अभिलेखों में उच्चैर्नागर शाखा का उल्लेख मिलता है। कोटिकगण कोटिवर्ष के निवासी आर्य सुस्थित से निकला था[४]। कोटिवर्ष की पहचान पुरातत्वविदों ने उत्तर बंगाल के फरीदपुर से की है[५]। इसी कोटिकगण से आर्य शान्ति श्रेणिक से उच्चैर्नागर शाखा के निकलने का उल्लेख है। कल्पसूत्र के गण, कुल और शाखाओं का अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि गणों का और शाखाओं का सम्बन्ध व्यक्तियों की अपेक्षा मुख्यतया स्थानों या नगरों से अधिक रहा है जैसे—वारणगण, वारणावर्त से

१. तत्त्वार्थभाष्य अन्तिम-प्रशस्ति, श्लोक सं० ३, ५

२. कल्पसूत्र, स्थविराली २१८

३. जैन शिलालेख संग्रह, भाग—२ लेखक्रमांक, १९, २०, २२, २३, ३१, ३५, ३६, ५०, ६४, ७१

४. कल्पसूत्र स्थविरावली, २१६

५. ऐतिहासिक स्थानावली (ले० विजयेन्द्र कुमार माथुर) पृ० सं० २३१

निदेशक, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी—५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धित था, कोटिकगण कोटिवर्ष से सम्बन्धित था, यद्यपि कुछ गण व्यक्तियों से भी सम्बन्धित थे। शाखाओं में कौशम्बिया, कोडम्बानी, चन्द्रनागरी, माध्यमिका, सौराष्ट्रिका, उच्चैर्नागर आदि शाखाएं मुख्यतया नगरों से सम्बन्धित रही हैं। कुलों का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्तियों से रहा है।

उच्चैर्नागर शाखा का उत्पत्ति स्थल ऊंचेहरा (म०प्र०)

प्रस्तुत आलेख में मात्र हम उच्चैर्नागर शाखा के सन्दर्भ में ही चर्चा करेंगे। विचारणीय प्रश्न यह है कि वह उच्चैर्नगर कहाँ स्थित था, जिससे यह शाखा निकली थी। मुनि श्री कल्याणविजय जी और हीरालाल कापड़िया ने कनिंघम को आधार बनाते हुए, इस उच्चैर्नागर शाखा का सम्बन्ध वर्तमान बुलन्दशहर से जोड़ने का प्रयत्न किया है। पं० सुखलाल जी ने भी तत्त्वार्थ की भूमिका में इसी का अनुसरण किया है। कनिंघम लिखते हैं कि "बरण या बारण यह नाम हिन्दू इतिहास में अज्ञात है। 'बरण' के चार सिक्के बुलन्दशहर से प्राप्त हुए हैं। मुसलमान लेखकों ने इसे बरण कहा है। मैं समझता हूँ कि यह वही जगह होगी और इसका नामकरण राजा अहिबरण के नाम के आधार पर हुआ होगा जो कि तोमर वंश से सम्बन्धित था और जिसने यह किला बनवाया था, किन्तु उसकी तिथि ज्ञात नहीं है। यह किला बहुत पुराना है और एक ऊँचे टीले पर बना हुआ है जिसके आधार पर हिन्दुओं द्वारा यह ऊँचा गांव या ऊँचा नगर कहा गया है और मुसलमानों ने उसे बुलन्दशहर कहा है।"[1] यद्यपि कनिंघम ने कहीं भी इसका सम्बन्ध उच्चैर्नागर शाखा से नहीं बताया, किन्तु उनके द्वारा बुलन्दशहर का ऊँचानगर के रूप में उल्लेख होने से मुनि कल्याणविजय जी और कापड़िया जी ने तथा बाद में पं० सुखलालजी ने उच्चैर्नागर शाखा को बुलन्दशहर से जोड़ने का प्रयास किया। प्रो० कापड़िया ने यद्यपि अपना कोई स्पष्ट अभिमत नहीं दिया है। वे लिखते हैं "इस शाखा का नामकरण किसी नगर के आधार पर ही हुआ होगा, किन्तु इसकी पहचान अपेक्षाकृतकठिन है; क्योंकि बहुत सारे ऐसे ग्राम और शहर हैं जिनके अन्त में 'नगर' नाम

1. Archaeological Survey of India, Vol. 14, p. 147

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाया जाता है। वे आगे भी लिखते हैं कि कनिंघम का विश्वास है कि यह ऊँचानगर से सम्बन्धित होगी[1]।" चूँकि कनिंघम ने आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया के १४वें खंड में बुलन्दशहर का समीकरण ऊँचानगर से किया था। इसी आधार पर मुनि कल्याणविजय जी ने यह लिख दिया है "ऊँचा नगरी शाखा प्राचीन ऊँचा नगरी से प्रसिद्ध हुई थी। ऊँचा नगरी को आजकल बुलन्दशहर कहते हैं[2]।" इस सम्बन्ध में पं० सुखलाल जी का कथन है—'उच्चैर्नागर' शाखा का प्राकृत नाम 'उच्चानागर' मिलता है। यह शाखा किसी ग्राम या शहर के नाम पर प्रसिद्ध हुई होगी, यह तो स्पष्ट दीखता है परन्तु यह ग्राम कौन-सा था, यह निश्चित करना कठिन है। भारत के अनेक भागों में 'नगर' नाम के या अन्त में 'नगर' शब्दवाले अनेक शहर तथा ग्राम हैं। 'बड़नगर' गुजरात का पुराना तथा प्रसिद्ध नगर है। बड़ का अर्थ मोटा (विशाल) और मोटा का अर्थ कदाचित् ऊँचा भी होता है। लेकिन गुजरात में बड़नगर नाम भी पूर्वदेश के उस अथवा उस जैसे नाम के शहर से लिया गया होगा, ऐसी भी विद्वानों की कल्पना है। इससे उच्चनागर शाखा का बड़नगर के साथ ही सम्बन्ध है, यह जोर देकर नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त जब उच्चनागर शाखा उत्पन्न हुई, उस काल में बड़नगर था या नहीं और था तो उसके साथ जैनों का कितना सम्बन्ध था, यह भी विचारणीय है। उच्चनागर शाखा के उद्भव के समय जैनाचार्यों का मुख्य विहार गंगा-यमुना की तरफ होने के प्रमाण मिलते हैं। अतः बड़नगर के साथ उच्चनागर शाखा के सम्बन्ध की कल्पना सबल नहीं रहती। इस विषय में कनिंघम का कहना है "यह भौगोलिक नाम उत्तर-पश्चिम प्रान्त के आधुनिक बुलन्दशहर के अन्तर्गत 'उच्चनगर' नाम के किले के साथ मेल खाता है[3]।"

---

१. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् (द्वितीय विभाग) प्रस्तावना, हीरालाल कापड़िया, पृ० ६

२. पट्टावली पराग संग्रह (मुनि कल्याण विजय), पृ० ३७

३. तत्त्वार्थसूत्र, (विवेचक पं० सुखलाल संघवी), प्रकाशक पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृ० सं० ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि ऊँचानगर शाखा का सम्बन्ध बुलन्दशहर से तभी जोड़ा जा सकता है जब उसका अस्तित्व ई०पू० प्रथम शताब्दी के लगभग रहा हो। मात्र यही नहीं उस काल में वह ऊँचानगर कहलाता भी हो। इस नगर के प्राचीन 'बरण' नाम का उल्लेख तो है, किन्तु यह भी ९-१०वीं शताब्दी से पूर्व का ज्ञात नहीं होता है। बारण (बरण) नाम से कब इसका नाम बुलन्दशहर हुआ, इसके सम्बन्ध में उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त की है। यह हिन्दुओं द्वारा ऊँचागाँव या ऊँचानगर कहा जाता था—मुझे तो यह भी उनकी कल्पना सी प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में वे कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। बरन नाम का उल्लेख भी मुस्लिम इतिहासकारों ने दसवीं सदी के बाद ही किया है[१]। इतिहासकारों ने इस ऊँचागाँव किले का सम्बन्ध तोमर वंश के राजा अहिवरण से जोड़ा है अतः इसकी अवस्थिति ईसा के पांचवीं-छठीं शती से पूर्व तो सिद्ध ही नहीं होती हैं। यहाँ से मिले सिक्कों पर 'गोवितसबाराणये' ऐसा उल्लेख है[२]। स्वयं कनिंघम ने भी यह सम्भावना व्यक्त की है कि इन सिक्कों का सम्बन्ध वारणाव या वारणावत से रहा होगा[३]। वारणावर्त का उल्लेख महाभारत में भी है जहाँ पाण्डवों ने हस्तिनापुर से निकलकर विश्राम किया था तथा जहाँ उन्हें जिन्दा जलाने के लिये कौरवों द्वारा लाक्षागृह का निर्माण करवाया गया था[४]। बारणावा (बारणावत) मेरठ से १६ मील और बुलन्दशहर (प्राचीन नाम बरन) से ५० मील की दूरी पर हिंडोन और कृष्णा नदी के संगम पर स्थित है। मेरी दृष्टि में यह वारणावत वही है जहाँ से जैनों का 'वारणगण' निकला था। 'वारणगण का उल्लेख भी कल्पसूत्र स्थविरावली एवं मथुरा के अभिलेखों में उपलब्ध होता है[५] अतः बारणावत (वारणावर्त) का सम्बन्ध वारणगण से हो सकता है न कि उच्चैर्नागरी शाखा से, जो कि कोटिकगण की शाखा

१. ऐतिहासिक स्थानावली, पृ० सं० ६०८, ६४०
२. कनिंघम—अर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वाल्यू० १४, पृ० १४७
३. वही,
४. ऐतिहासिक स्थानावली, पृ० सं० ८४३-४४
५. कल्पसूत्र, स्थविरावली २१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी । अतः अब हमें इस भ्रान्ति का निराकरण कर लेना चाहिए। उच्चैर्नागर शाखा का सम्बन्ध किसी भी स्थिति में बुलन्दशहर से नहीं हो सकता है।

यह सत्य है कि उच्चैर्नागर शाखा का सम्बन्ध किसी ऊँचानगर से ही हो सकता है। इस सन्दर्भ में हमने इससे मिलते-जुलते नामों की खोज प्रारम्भ की। हमें ऊँचाहार, ऊँचडीह, ऊँचीबस्ती, ऊँचौलिया, ऊँचाना, ऊँच्चेहरा आदि कुछ नाम प्राप्त हुए।[1] हमें इन नामों में ऊँचाहार (उ० प्र०) और ऊँचेहरा (म० प्र०) ये दो नाम अधिक निकट प्रतीत हुए। ऊँचाहार की सम्भावना भी इसलिए हमें उचित नहीं लगी कि उसकी प्राचीनता के सन्दर्भ में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। अतः हमने ऊँचेहरा को ही अपनी गवेषणा का विषय बनाना उचित समझा। ऊँचेहरा मध्यप्रदेश के सतना जिले में सतना रेडियो स्टेशन से ११ कि.मी. दक्षिण की ओर स्थित है। ऊँचेहरा से ७ कि मी. उत्तर-पूर्व की ओर भरहुत का प्रसिद्ध स्तूप स्थित है, इससे इस स्थान की प्राचीनता का भी पता लग जाता है। वर्तमान ऊँचेहरा से लगभग २ कि. मी. की दूरी पर पहाड़ के पठार पर यह प्राचीन नगर स्थित था, इसी से इसका ऊँचानगर नामकरण भी सार्थक सिद्ध होता है। वर्तमान में यह वीरान स्थल 'खोह' कहा जाता है। वहाँ के नगर निवासियों ने मुझे यह भी बताया कि पहले यह उच्चकल्पनगरी कहा जाता था और यहाँ से बहुत सी पुरातात्विक सामग्री भी निकली थी। यहाँ से गुप्त काल अर्थात् ईसा की पांचवीं शती के राजाओं के कई दानपत्र प्राप्त हुए हैं। इन ताम्र-दानपत्रों में उच्चकल्प (उच्छकल्प) का स्पष्ट उल्लेख है, ये दानपत्र गुप्त सं० १५६ से गुप्त सं० २०९ के बीच के हैं। (विस्तृत विवरण के लिये देखें ऐतिहासिक स्थानावली—विजयेन्द्र कुमार माथुर, पृ० २६०-२६१)। इससे इस नगर की गुप्तकाल में तो अवस्थिति स्पष्ट हो जाती है। पुनः जिस प्रकार विदिशा के समीप सांची का स्तूप निर्मित हुआ है उसी प्रकार इस उच्चैर्नगर (ऊँचहेरा) के समीप भरहुत का स्तूप निर्मित हुआ था और यह स्तूप ई० पू० दूसरी या प्रथम शती का है। इतिहासकारों ने इसे शुंग काल का

१. ऊँच्छ नामक अन्य नगरों के लिए देखिए—The Ancient Geography of India (Cunningham) pp. 204-205

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माना है। भरहुत के स्तूप के पूर्वी तोरण पर 'वाच्छिपुत्त धनभूति का उल्लेख है।[1] पुनः अभिलेखों में 'सुगनं रजे' ऐसा उल्लेख होने से शुंग काल में इसका होना सुनिश्चित है।[2] अतः उच्चैर्नागर शाखा का स्थापना काल (लगभग ई०पू० प्रथम शती) और इस नगर का सत्ताकाल समान ही है। अतः इसे उच्चैर्नागर शाखा का उत्पत्ति स्थल मानने में काल की दृष्टि से कोई बाधा नहीं है। ऊँचेहरा (उच्चकल्प-नगर) एक प्राचीन नगर था इसमें अब कोई संदेह नहीं रह जाता है। यह नगर वैशाली या पाटलिपुत्र से वाराणसी होकर भरुकच्छ को जाने वाले अथवा श्रावस्ती से कौशाम्बी होकर विदिशा, उज्जयिनी और भरुकच्छ जाने वाले मार्ग में स्थित है। इसी प्रकार वैशाली-पाटलिपुत्र से पद्मावती (पँवाया), गोपाद्रि (ग्वालियर) होता हुआ मथुरा जाने वाले मार्ग पर भी इसकी अवस्थिति थी। उस समय पाटलीपुत्र से गंगा और यमुनाके दक्षिण से होकर जाने वाला मार्ग ही अधिक प्रचलित था क्योंकि इसमें बड़ी नदियाँ नहीं आती थीं, मार्ग पहाड़ी होने से कीचड़ आदि भी अधिक नहीं होता था। जैन साधु प्रायः यही मार्ग अपनाते थे।

प्राचीन यात्रा मार्गों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि ऊँचा-नगर की अवस्थिति एक प्रमुख केन्द्र के रूप में थी। यहाँ से कौशाम्बी प्रयाग, वाराणसी, पाटलिपुत्र, विदिशा, मथुरा आदि सभी ओर मार्ग जाते थे। पाटलिपुत्र से गंगा-यमुना आदि बड़ी नदियों को बिना पार किये जो प्राचीन स्थल मार्ग था उसके केन्द्र नगर के रूप में उच्च-कल्प नगर (ऊँचानगर) की स्थिति सिद्ध होती है। यह एक ऐसा मार्ग था जिसमें कहीं भी कोई बड़ी नदी नहीं आती थी। अतः सार्थ निरापद समझकर इसे ही अपनाते थे। प्राचीन काल से आज तक यह नगर धातुओं के मिश्रण के बर्तनों हेतु प्रसिद्ध रहा है। आज भी वहाँ कांसे के बर्तन सर्वाधिक मात्रा में बनते हैं। ऊँचेहरा का उच्चैर् शब्द से जो ध्वनि-साम्य है वह भी हमें इसी निष्कर्ष के लिए बाध्य करता है कि उच्चैर्नागर शाखा की उत्पत्ति इसी क्षेत्र से हुई थी।

उमास्वाति का जन्म स्थान नागोद (म०प्र०)

उमास्वाति ने अपना जन्म स्थान न्यग्रोधिका बताया है। इस

१. भरहुत (डॉ० रमानाथ मिश्र), प्रकाशनम० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, (म० प्र०) भूमिका पृ० १८
२. वही, पृ० १८-१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्ध में भी विद्वानों ने अनेक प्रकार के अनुमान किये हैं। चूँकि उमास्वाति ने तत्वार्थभाष्य की रचना कुसुमपुर (पटना) में की थी[1] अतः अधिकांश लोगों ने उमास्वाति के जन्मस्थल की पहचान उसी क्षेत्र में करने का प्रयास किया है। न्यग्रोध को वट भी कहा जाता है। इस आधार पर पहाड़पुर के निकट बटगोहली, जहाँ से पंचस्तूपान्वय का एक ताम्र लेख मिला है, से भी इसका समीकरण करने का प्रयास किया है। मेरी दृष्टि में ये धारणाएं समुचित नहीं हैं। उच्चैर्नागर शाखा, जो ऊँचेहरा से सम्बन्धित थी, उसमें उमास्वाति के दीक्षित होने का अर्थ यही है कि वे उसके उत्पत्ति स्थल के निकट ही कहीं जन्मे होंगे। उच्चैर्नगर या ऊँचेहरा से मथुरा जहाँ उच्चनागरी शाखा के अधिकतम उल्लेख प्राप्त हुए हैं तथा पटना जहाँ उन्होंने तत्त्वार्थ भाष्य की रचना की, दोनों ही लगभग समान दूरी पर अवस्थित रहे हैं। वहाँ से दोनों लगभग ४५० कि० मी० की दूरी पर अवस्थित हैं और किसी जैन साधु के द्वारा यहाँ से एक माह की पदयात्रा कर दोनों स्थलों पर आसानी से पहुँचा जा सकता है। स्वयं उमास्वाति ने ही लिखा है कि वे विहार (पदयात्रा) करते हुए कुसुमपुर (पटना) पहुँचे थे।[2] (विहरतापुवरे कुसुमनाम्नि) इससे यही लगता है कि न्यग्रोध, (नागोद) कुसुमपुर (पटना) के बहुत समीप नहीं था। डॉ० हीरालाल जैन ने संघ विभाजन स्थल-रहवीरपुर की कल्पना दक्षिण में महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के राहुरी ग्राम से और उसी के समीप स्थित 'निधोज' से की किन्तु यह ठीक नहीं है।[3] प्रथम तो व्याकरण की दृष्टि से न्यग्रोध का प्राकृत रूप नागोद होता है, निधोज नहीं। दूसरे उमास्वाति जिस उच्चैर्नागर शाखा के थे, वह शाखा उत्तर भारत की थी, अतः उनका सम्बन्ध उत्तर भारत से ही है। अतः उनका जन्म स्थल भी उत्तर भारत में ही होगा। उच्चनागरी शाखा का उत्पत्ति स्थल इसी उचेहरा से लगभग ३० कि० मी० पश्चिम की

१. तत्त्वार्थसूत्र, पृ० ५

२. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, स्वोपज्ञ भाष्य, अन्तिम प्रशस्ति, श्लोक सं० ३

३. दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्शन, प्रका० दिगम्बर जैन पंचायत बम्बई, दिसम्बर १९४४ में मुद्रित 'जैन इतिहास का एक विलुप्त अध्याय' नामक प्रो० हीरालाल जैन का लेख, पृ० ७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओर 'नागोद' नाम का कस्बा आज भी है। आजादी के पूर्व यह एक स्वतंत्र राज्य था और ऊँचेहरा इसी राज्य के अधीन आता था। नागोद के आस-पास भी जो प्राचीन सामग्री मिली है उससे यही सिद्ध होता है कि यह भी एक प्राचीन नगर था। प्रो० के० डी० बाजपेयी ने नागोद से २४ कि० मी० दूर नचना के पुरातात्विक महत्त्व पर विस्तार से प्रकाश डाला है।[1] नागोद की अवस्थिति पन्ना (म० प्र०), नचना और ऊँचेहरा के मध्य है। इन क्षेत्रों में गुप्तकाल के पूर्व शुंगकाल से लेकर ९वीं-१०वीं शती तक की पुरातात्विक सामग्री मिलती है अतः इसकी प्राचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता है। नागोद न्यग्रोध का ही प्राकृत रूप है अतः सम्भावना यही है कि उमास्वाति का जन्म स्थल यही नागोद था और जिस उच्चनागरी शाखा में वे दीक्षित हुए थे, वह भी उसी के समीप स्थित ऊँचेहरा (उच्चकल्प नगर) से उत्पन्न हुई थी। तत्वार्थ भाष्य की प्रशस्ति में उमास्वाति की माता को वात्सी कहा गया है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वर्तमान नागोद और ऊँचेहरा दोनों ही प्राचीन वत्स देश के अधीन ही थे। भरहुत और इस क्षेत्र के आस-पास जो कला का विकास देखा जाता है, वह कौशाम्बी अर्थात् वत्सदेश के राजाओं के द्वारा किया गया था। ऊँचेहरा वत्सदेश के दक्षिण का एक प्रसिद्ध नगर था। भरहुत के स्तूप के निर्माण में भी वात्सी गोत्र के लोगों का महत्त्वपूर्ण योगदान था, ऐसा वहाँ से प्राप्त अभिलेखों से प्रमाणित होता है। भरहुत के स्तूप के पूर्वी तोरणद्वार पर वाच्छीपुत्त धनभूति का उल्लेख है।[2] अतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उमास्वाति का जन्मस्थल नागोद (न्यग्रोध) और उनकी उच्चैर्नागर शाखा का उत्पत्ति स्थल ऊँचेहरा ही है।

●

१. संस्कृति संन्धान (सम्पा० डा० झिनकू यादव), प्रका० राष्ट्रीय मानव संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी वाल्यू III १९९० में मुद्रित 'बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर: नचना नामक प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी का लेख, पृ० ३१

२. भरहुत, भूमिका पृ० सं० १८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूडा-सहेली की प्रेम कथा

*भँवरलाल नाहटा

जैनधर्म के चार अनुयोगों में एक धर्मकथानुयोग है। जन सामान्य की इस ओर विशेष रुचि होने के कारण कथा साहित्य बहुत ही विस्तृत परिमाण में उपलब्ध है। जैसे चामत्कारिक और कौतूहल-प्रधान कथासाहित्य की ओर प्राचीन काल से ही विशेष लोकरुचि रही है, वैसे ही प्रेमकथाओं की ओर झुकाव भी किसी प्रकार कम न था। त्याग प्रधान जैनधर्म के अनुयायी ग्रन्थकारों ने ऐसी लोक-कथाओं का निरूपण करते हुए भी धर्म-सदाचार और अन्त में सर्वस्व त्याग कर चारित्र स्वीकार करने और सद्गतिभाजन होने के रंग भरकर कथावस्तु को ऐसे चित्रित किया है कि श्रोता अपनी आचार-मर्यादा में स्थित रहने का उपदेश प्राप्त कर सके। यह परम्परा अति प्राचीन थी और प्राकृत साहित्य की तरंगवती कथाएँ अपने आप में परिपूर्ण और तत्कालीन स्थिति और साहित्यिक महत्त्व की अमूल्य सामग्री प्रदान करती हैं। संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश की वह परम्परा हिन्दी-राजस्थानी और गुजराती में भी अबाध गति से चलती रही और इन भाषाओं में सभी जैन कवियों ने प्रेम-कथाएँ लिखीं, पर अभी तक इस ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है। अतः साधारणतया यही धारणा बन गई है कि जैन धर्म में नीति व धर्म प्रधान साहित्य ही है। परन्तु जैन विद्वानों ने जिस प्रकार कौतूहल-प्रधान एवं धर्म-नीति काव्यों को अपनाया है, वैसे ही प्रेम-कथाओं पर भी अपनी लेखनी चलाई है। यहाँ सोलहवीं सदी की ऐसी ही एक **सूडा-सहेली** नामक राजस्थानी लोक-प्रेमकथा का परिचय कराया जा रहा है जिसे सुप्रसिद्ध कवि सहजसुन्दर ने निर्मित किया है।

सूडा सहेली या शुकराज सहेली के रचयिता कवि सहजसुन्दर सोलहवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध और विद्वान् कवि थे। आप अधिकांशतः राजस्थान और गुजरात में विचरे। ये उपकेशगच्छ के आचार्य सिद्धिसूरि के आज्ञानुवर्ती थे। इस गच्छ की एक गद्दी बीकानेर बस

*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाने पर (वि०सं० १५४५) यहाँ भी स्थापित हो गई थी। आप **शतकत्रयवृत्ति** के रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान् धनसार उपाध्याय के प्रशिष्य और उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य थे। कवि सहजसुन्दर का ग्रन्थ रचना काल सं० १५७० से सं० १५९५ तक ज्ञात होता है।

प्रस्तुत निबन्ध में **जैनगुर्जरकविओ** भाग-१ और भाग-३ के आधार पर कवि के रचनाओं की सूची आगे दी गई है। पच्चीस वर्षों के रचना-काल में कवि ने और भी रचनाएँ की होंगी, जिनका प्रचार नहीं हो पाया। उपकेशगच्छ के ज्ञान भण्डार अस्त-व्यस्त हो चुके हैं, अतः सहजसुन्दर की अन्य रचनाओं की खोज करना कठिन है। उपकेश-गच्छ की परम्परा भगवान् पार्श्वनाथ से जोड़ी जाती है। मध्यकाल में इस गच्छ का बड़ा प्रभाव रहा है। मारवाड़ के ओसीया नामक स्थान का प्राचीन नाम उपकेशपुर था। ओसवाल जाति ओसीया से ही प्रसिद्धि में आयी है। उपकेशगच्छ में बहुत से संस्कृत और राजस्थानी भाषा के कवि हुए हैं। मुनि ज्ञानसुन्दर जी ने **'पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास'** नामक बृहद् ग्रंथ दो भागों में प्रकाशित किया है। **'शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्धादि'** इस गच्छ की कुछ रचनाएँ ही प्रकाशित हुई हैं और अधिकांशतः अप्रकाशित ही हैं।

कवि सहजसुन्दर की रचनाओं की सूची

१—एलाची पुत्र सज्झाय० गा० ३१, सं० १५७० जेठ वदि ९

२—गुणरत्नाकर छन्द गा० १६०, सं० १५७२

३—ऋषिदत्ता रास गा० ३६८, सं० १५७२

४—रत्नसार कुमार चौपाई पद्य ९९, सं० १५८२

५—आत्मराज रास गा० ८०, सं० १५८२ (८)

६—परदेशी राजानोरास गा० २१९

७—शुकराज सहेली कथारास

८—जम्बू अन्तरंगरास गा० ६३

९—यौवन जरा संवाद गा० २५

१०—तेतलीपुत्रमन्त्री रास गा०, सं० १५९५, आ० सु० ८, मंगल शांतज।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११—प्रसन्नचन्द्र राजर्षि रास[1], सं० १६४८ (?)
१२—इरियावही रास, गा० ७५, सं० १५७१ (?)
१३—गर्भवेली, गा० ४४
१४—सरस्वती छन्द, गा० १४
१५—शालिभद्र सज्झाय, गा० १७
१६—आदिनाथ शत्रुञ्जय स्तवन
१७—आँख-कान संवाद

मुनिराज श्री पुण्यविजय के संग्रह से प्राप्त एक गुटके में **सूडा सहेली रास** उपलब्ध हुआ है जिसका हिन्दीसार यहाँ दिया जा रहा है :—

सूडा-सहेलीरास का सार

सरस्वती, वीर जिनेश्वर और गौतम स्वामी को नमस्कार करके गुर्वाज्ञा प्राप्त कर कवि सहजसुन्दर **सूडा** और **सहेली** की प्रेम-कथा पद्य में लिखता है। इसी जम्बूद्वीप की उज्जयनी नगरी में मकरकेतु नामक राजा राज्य करता था। जिसकी प्रिया सुलोचना की कुक्षि से कन्या-रत्न का जन्म हुआ। वह रम्भा के सदृश लावण्यवती थी। बड़ी होने पर सरस्वती की भांति विद्या, गुण, कला में प्रवीण हो गई, उसका नाम सहेली था।

तरुणावस्था प्राप्त सहेली कुमारी ने एक बार रात्रि के समय स्वप्न में देखा कि वह विदेश गई है और विद्याधर नगरी में पहुँची। वहाँ के राजा मदन भीम के पुत्र शुकराज विद्याधर के साथ क्रीडा की, जो अत्यन्त सुन्दर और गुणसम्पन्न था। इसके बाद वह तुरन्त जग गई और उसके गुणों को अश्रुपूर्ण नेत्रों से स्मरण करने लगी। उसे अपने जगने से स्वामी को खो देने का पछतावा होने लगा।

सहेली कल्पना करने लगी—सुख भर नींद में सोई थी कि परदेशी प्रियतम आये और मैं उनसे गले लगकर मिली। हृदय-कमल में प्रियतम भ्रमर एकांत में मिला पर सूर्योदय होते ही उड़ गया।

---

१. यह रचना यदि सहजसुन्दर की है तो रचना-काल पूर्ववर्ती होगा। प्रति को देखकर निर्णय करना आवश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह जल-विहीन मछली की भाँति तड़पने लगी और आँखें श्रावण के मेघ की भाँति बरसने लगीं। विरहानल-दग्ध नवयौवना को पपीहा के पीऊ-पीऊ स्वर शल्य की भाँति खटकने लगे। उसे शीतल वायु चन्दन और चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना नहीं सुहाती और वह कुम्हलाई हुई रहने लगी। कभी वह प्रियतम से स्वप्न में पुनः मिलने के लिए नींद लेने का उपक्रम करती पर आँखों से नींद सर्वथा दुर्लभ हो गई। उसका हृदय पक्षी की भाँति आकाश में उड़ रहा था, अब स्वप्न की आशा कहाँ ? उसके और प्रियतम के बीच नदी-नाले और पर्वत-श्रेणी का अवरोध था अतः चरणों से उन्हें उल्लंघन कर जाना अशक्य होने से वह सारस पक्षी से पंखें मांगने लगी, जिसके द्वारा वह प्रियतम से जा मिले। वह जब सखियों से बोलचाल, हास्य-क्रीड़ा बन्द कर अनमनी रहने लगी तो सखियों ने उससे पूछा कि तुम्हारी यह दशा क्यों ? क्या माता-पिता ने कोई कष्टकारी बात कही है या अन्य कोई कारण है ?

सहेली ने लज्जा त्याग कर सखियों से स्वप्न में शुकराज से मिलने की बात बतलाते हुए कहा कि मै अपने इसी इच्छित वर के सिवाय किसी से पाणिग्रहण नहीं करूँगी। यह मेरा अटल नियम समझो। दैव भी कैसे हैं, सदृश जोड़ी न मिलाकर सद्गुणी को गुणहीन और गुणहीन को सद्गुणी नारी देता है। माता-पिता पूछते नहीं; रूप-कुरूप न देखकर, ढकना ढ़क देते हैं, ज्योतिषी भी खोटे हैं। ऐसी स्थिति में कैसे काल निर्गमन हो ? रायणी (फल) से रीगणीसदल सुरंग होने पर भी गुण बिना कोई स्वीकार नहीं करता। परमात्मा की प्रसन्नता हो तभी सरीखी और मनपसन्द जोड़ी मिलती है। सहेली कहने लगी —शिक्षित-संस्कारित पुरुष के न मिलने पर वह सूखे शाल-काष्ठ की तरह जलती है। लोहार के घर गया रत्न भी कोयले के साथ घान किया जाकर अंगार हो जाता है। मूर्ख के यहाँ गुणों का विनाश ही होता है। कौवे के गले में हार और कीचड़ में पड़ी चुनड़ी की भाँति अयुक्त जोड़ी से विनाश ही होता है। अतः मैं तो उसी मनपसन्द व्यक्ति से व्याह करूँगी अन्यथा अग्निशरण कर जाऊँगी। जैसे मानसरोवर में हंस की, सत्पुरुष से वंश की, सोने में जड़े हुए हीरे की और गंगा नदी में निर्मल जल की शोभा है वैसे ही पति-पत्नी सरीखी जोड़ी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुशोभित होती है अन्यथा अज्ञानी नाम सिर पर आ जाय तो सुविज्ञ विदुषी नारी भी क्या करे ? इस प्रकार प्रणय-विवाह की लम्बी व्याख्या सुनकर सखियों ने कहा–आखिर यह तो कहो कि विदेश में रहे नर-रत्न को किस उपाय से प्राप्त करोगी ? इस प्रकार से सहेली कुमारी की प्रतिज्ञा और सौन्दर्य-चर्चा सर्वत्र देश-विदेश में प्रसिद्ध हो गई।

विद्याधर पुरी में शुकराज कुमार ने सहेली के रूप की बात सुनी जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"जिहां ते कुमार अहि जेणि नगरि,
बात गई तिहां भमति नगरी।
कपि जसी रंभा अपछरी,
नाग लोक नारी अवतरी ॥ ४७ ॥
अलिकलि लिहि किवीण,
विसहर लरि भनाव्योतेणि।
वदन जिसु पुनिन नु चन्द,
मोहन वेलि तणऊ किच कंद ॥ ४८ ॥
लोचन वाण जिस्या भालडी,
सीगणि भयण तणी भमुहड़ी।
आठमि चन्द तणि परिमाल,
नासा वंश माहा गणी आल ॥ ४९ ॥
अधर प्रवाली सललत वली,
दन्त जिसा दाड़िमनीकुली।
युगल पयोधर सोवन कुंभ,
जांघ जसी कदली नु थंभ ॥ ५० ॥
गुणवती चालि गजगति,
भयण तणा मोहष मलपति।
वेणी विसहर मणि वाखड़ी,
आँजवलि आखड़ी ॥ ५१ ॥
चन्द मुखि चंपक बांनि,
झब–झब झबकि कुंडल कानि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवसर हार पालिपदकड़ी,
कर कंकण नेऊर सुंपड़ी ॥ ५२ ॥
भवरंगित चूड़ी झलंकति,
कटि मेखला झंझर झप्रकति ।
विदि व्यख्यणि ते नारी कथा,
किहि सलोक सुभाषित तथा ॥ ५३ ॥
गाहा भेद सारिते कहि,
पुछ्या नु वलि उत्तर कहि ।
पिंगल भरह सुकर पल्लवी,
गुण सगित कि सरसती नवी ॥ ५४ ॥

इस प्रकार सहेली के रूप गुण की प्रशंसा से शुकराज कुमार का चित आन्दोलित हो उठा और वह उससे मिलने एवं पाणिग्रहण करने के लिये कृतसंकल्प होकर घर से निकल पड़ा। विद्याधर तो था ही, जब चाहे जैसा रूप धारण कर सकता था। उसने अपने नाम के अनुसार शुक का रूप धारण कर लिया और उड़ता हुआ उज्जयनी नगरी आ पहुँचा।

जब शुक राजकुमारी के महलों पर उड़ता हुआ चक्कर लगा रहा था तो राजकुमारी की बाँयी आंख फड़कने लगी। शुक के रूप में शुकराज गाथा समस्या बोलता हुआ उसके निकट आ उतरा। सूखते हुए खेत में जैसे अकाल वर्षा हो जाए और प्यासे को पानी मिल जाए, उसी प्रकार राजकुमारी हर्ष से पुलकित हो गई। उसने मानव भाषा में बोलने वाले विलक्षण शुक से उसका परिचय पूछा। उसने अपना परिचय यों दिया :—

विद्याधरों में (वैताढ्य पर्वत पर) दक्षिण श्रेणि में राजकुमार शुकराज रहता है जो अत्यन्त भोगी भ्रमर है वह शुक के रूप में क्रीड़ा कौतूहल करता है। उसी मधुर-भाषी कुमार ने मुझे पालपोस कर बड़ा किया और पढ़ाया। मेरी प्रिया शुकी मुझसे रुष्ट होकर कहीं अन्यत्र चली गई। उसी के अनुसंधान में मैं देश-विदेश भ्रमण कर रहा हूँ। विरहानल में जलता हुआ मैं थक कर चूर हो गया हूँ और अब वर्षाकाल आ जाने से मेरी पांखे भीगने लगीं। लम्बे मार्ग को तय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना अशक्य है एवं लोगों से तुम्हारी चतुराई की प्रशंसा सुनकर यहाँ आ गया हूँ।

उसने शुक का स्वागत करते हुए कहा—आप यहाँ चित्रशाला में सुख से रहें, दाडिमादि फल भोजन करें। उसने एक सोने का पिंजड़ा मँगाकर रखा। शुकराज कौतूहल पूर्वक फलाहार करता हुआ उसमें रहने लगा। वह नाना श्लोक-सुभाषितों से सहेली का मनोरंजन करता। शुक के वचनों से उसको अपने स्वप्न के सत्य की प्रतीति हो गई और शुकराज के प्रति विशेष प्रीति जागृत हुई। वह शुक की विशेष भक्ति करती और शुकराज के गुणस्मरण, ध्यान में विशेष रत हो गई। विरहाकुल सहेली का शरीर सूख गया और हाथों की चूड़ियाँ निकल कर गिरने लगीं। उसके अश्रु प्रवाह को देखकर शुक के पूछने पर उसने अपनी अन्तर्व्यथा कहते हुए कहा—कुमार शुकराज के बिना मेरी एक-एक घड़ी छः मास की तरह व्यतीत होती है, उनसे मिलन कैसे हो ? तुम उनके सहदेशी हो, अतः मिलने का उपाय बताकर मेरा दुःख दूर करो। शुक ने कहा अभी तो तुमने उसे देखा तक नहीं है, व्यर्थ का विलाप करती हो। सहेली ने कहा—मैंने स्वप्न में उन्हें देखा है, तुम कठोर न बनकर उनसे मिलाओ। उनके और मेरे बीच वन-पर्वत, नदी-नालों का दीर्घ अन्तर है पर प्रीति में लाखों योजन का अन्तर कभी बाधक नहीं होता। चातक और मेघ; सूर्य और कमल; चन्द्र और कुमुदिनी में कितनी दूरी है, परन्तु प्रीति में दूरी क्या ? आँख और कान के बीच चार अंगुल की ही दूरी है पर कभी एक दूसरे को नहीं देखते।

शुक ने कहा—और भी लाखों पुरुष-रत्न हैं, तुम्हें तुम्हारी जोड़ी का सद्गुणी लाकर मिला दूँ। सहेली ने कहा—रे पागल ! ऐसी सीख मुझे मत दो इस भव में तो मेरा वही स्वामी है, अन्यथा अग्नि की शरण है। मेरे समक्ष उनके सिवा दूसरे गुणों की बात ही न निकालना फिर कभी ऐसी अनर्गल बात कही तो मैं प्राणों का त्याग कर तुम्हें स्त्री-हत्या का श्राप दे दूंगी।

शुक ने सोने की भाँति सहेली की कसौटी करके उसके प्रेम को सच्चा पाया। अंजली में बँधा जल कितनी देर रह सकता है ? फूल का परिमल कभी गोप्य रह सकता है ? वह सहेली को कभी हँस और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कभी शुक का रूप दिखाता हुआ कहने लगा—मैं चातक तुम चातकी हो, लज्जा का जल बीच में बाधक है। सहेली ने चमककर वचनों से निश्चय किया कि लक्षण और गुणों से यही पुरुषरत्न शुकराज है। उसने आम्रमंजरी प्रभावित सुस्वर कोकिला की भाँति वचनचातुरी से मुग्ध कर शुकराज को अपना वृतान्त सुनाने के लिये बाध्य किया तो उसने कहा—तुम्हारे लिये मैं अपनी वल्लभा सोहगसुन्दरी और राज्य को त्यागकर यहाँ आया। शुक के रूप में मैं राजकुमार हूँ। तुम्हें पाकर मैं सफल हुआ, तुम्हारे सभी मनोवांछित पूर्ण करूँगा।

इसके अनन्तर शुक पुरुषरूप प्रकट करने का प्रयत्न करने लगा परन्तु वह किसी भी प्रकार अपने प्रकृत रूप में न आ सका तो विषाद के मारे हास्य विनोद त्यागकर खिन्न चित्त हो गया। उसकी दशा डाल-चूके बन्दर की भाँति थी, उसकी सारी आशाएँ कुएँ की छाँट की भाँति मन ही मन रह गईं। सहेली ने कहा—तुम दुःख के मारे नींद व आहार का त्यागकर प्राण मत गँवाओ। मैं तुम्हारी भक्ति करूँगी, मैं मानवी और तुम पक्षी रूप हो और क्या किया जाय। तुम तो देश-विदेश उड़कर नये-नये फलों का रस चखोगे, पर मुझे तो घर में ही पड़े रहना है। तुम किस प्रकार अनमने हो? क्या माता-पिता, घर या पत्नी की याद आ गई? मुझे तुम्हारे यहाँ से चम्पत होने के आसार लगते हैं पर यह समझ लेना कि मेरा जीवन तुम्हारे साथ है। तुम मुझे अपनी विद्या सिखा दो ताकि मैं भी शुकी बनकर तुम्हारे साथ भ्रमण करने का आनन्द ले सकूँ अन्यथा तुम्हारा वियोग मुझे असह्य होगा।

शुक ने सहेली से कहा—तुम्हारा कोई दोष नहीं, वास्तव में रहस्य की बात यह है कि मेरी सौन्दर्यवती स्त्री ने कार्मण करके श्राप दिया है। अब मुझे पक्षी रूप से पुनः नर देह मिलना कठिन हो गया। मुझे इसी बात का दुःख है। मेरी समस्त आशालताओं पर तुषारापात हो गया। अब मुझे अहर्निश यही चिन्ता सताती है उसी दैव का दोष है, जिसने समुद्र का जल खारा कर दिया, पद्मनाल में कण्टक, हिमालय में हिम, चन्द्र में कलंक और पण्डितों को निर्धन कर दिया। (यहाँ कवि ने गट्ट कवि के दैव सम्बन्धी दो कवित्त उद्धृत किये हैं, जिनका पद्यांक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चालू पद्यांक के ही साथ है।) दैव ने मूर्ख के सिर पर सींग और चतुर को पांख ही नहीं दी, अन्यथा मूर्ख सबको दौड़कर मारता और चतुर अपने पंखों द्वारा स्वेच्छापूर्वक विचरण करता? क्या उपाय किया जाये? रोने से राज्य नहीं मिलता।

इस प्रकार शुक और सहेली के विमर्श में नेपथ्य से कोई देव वाणी हुई कि उत्तर-पश्चिम दिशा के मध्य में नन्दनवन जैसी वनमाला है। जिसकी मणिमय भूमि में बहुरूपी नाम का वृक्ष है। वहाँ चिड़ियां-यमली चील एवं भारण्ड पक्षी निवास करते हैं। उस वृक्ष के पंच वर्णों फूल एवं मधुर रस वाले अमूल्य फल हैं, जहाँ देव-देवी नाटक-क्रीडादि करते हैं। वह वृक्ष दिन में रस छोड़ता है, जिससे स्नान करने पर तुम अपना पुरुष-रूप पुनः प्राप्त कर सकोगे। हे शुक! तुम मेरे स्वामी हो, मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। शुक ने देव के कथनानुसार रस-स्नान करके अपना प्रकृत मानव देह प्राप्त कर लिया। बादलों की ओट से निकले हुए सूर्य की भाँति शुकराज का तेजस्वी रूप देखकर राजकुमारी अत्यन्त हर्षित हुई और उसकी सखियाँ वारणा लेती हुई लुँछणा करने लगी। सहेली के भवन में सर्वत्र हर्ष का साम्राज्य छा गया।

शुकराज और सहेली का मनोवांछित पूर्ण हुआ। कुल देवता की प्रसन्नता पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से घर बैठे सज्जन-मिलाप हो गया। वे दोनों देवों की भाँति सुखों का विलास करते हुए काल निर्गमन करने लगे।

एक बार वसन्त ऋतु के समय वे क्रीड़ा कर रहे थे। शुकराज ने देखा कौवे के यहाँ एक हँसी गृहिणी थी, वे दोनों केलि करते थे। कौवे की आज्ञा पालन में हँसी तत्पर थी। जैसे वह कहता, हंसी करती, उसके लिये चुन-पानी प्रस्तुत करती। तारुण्य जाति-कुजाति नहीं देखता। धिक्कार है इस काम विडम्बना को इस प्रकार सद्गुरु उपदेश है कि नारी रूपी दीपक में पुरुष फतिंगें की भाँति गिरकर अपना नाश करता है। कामरूपी सरोवर पाप-जल पूरित है, जिसमें सारा जगत् डूबा हुआ है। दही विलोने पर मक्खन की भाँति विरले ही व्यक्ति तिर कर निकलते है, जहां स्त्री है, वहाँ मृगपाश है। मेरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसा व्यक्ति भी मोहमुग्ध होकर कीचड़ में पड़ा है और चिन्तामणि रत्न जैसा मानव-भव खो रहा है।

इस प्रकार हंसी और काक के स्वरूपों को देखकर प्रतिबोध प्राप्त शुकराज ने संसार त्यागकर चारित्र स्वीकार कर लिया। उसने लाख वर्ष तपस्या करके स्वर्ग-विमान में अवतार लिया। कवि सहजसुन्दर वाचक कहते हैं कि जो शुकराज का चारित्र पढ़ेगा, सुनेगा वह सुख प्राप्त करेगा।

जिस सूड़ा सहेली रास का कथासार ऊपर दिया गया है, वह १६० (अन्य प्रति में १६७) पद्यों की रचना है। सोलहवीं शती में लिखित इस प्रेमकथा की परम्परा प्राचीन प्रतीत होती है। कवि ने किस ग्रन्थ के आधार से ली या मौखिक लोककथा को अपनाया वह अन्वेषणीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनसम्मत आत्मस्वरूप का अन्य भारतीय दर्शनों से तुलनात्मक विवेचन

—डॉ० (श्रीमती) कमला पंत

आत्मज्ञान जीवन और दर्शन का आधार है। आत्मा के बिना ये दोनों ही निष्प्राण हो जाते हैं। मनु के शब्दों में "आत्मज्ञान श्रेष्ठ ज्ञान, प्रथम विद्या एवं अमृत (जन्म-मरण चक्र से छूटना) है।[१]" आत्मा के विषय में समग्र भारतीय दार्शनिक एकमत हैं, किन्तु आत्म स्वरूप को सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्यायित किया है।

चार्वाक देह, इन्द्रिय, प्राण अथवा मन को आत्मा मानते हुए अपनी भौतिकवादी दृष्टि का परिचय देते हैं।[२] बौद्धों के अनुसार जीवात्मा पञ्चस्कन्धात्मक, विज्ञान प्रवाहरूप, क्षणिक, शून्य एवं अपरिमाणी होता है।[३] न्याय, वैशेषिक, मीमांसक एवं जैन आत्मा को नित्य द्रव्य मानते हैं[४] किन्तु ज्ञान को आत्मा का आगन्तुक गुण या नित्य गुण मानने के विषय में जैन दर्शन का न्यायादि से पृथक् विचार है। सांख्य,[५] योग एवं अद्वैत वेदान्त[६] आत्मा को ज्ञानस्वरूप कहते हैं। द्वैत वेदान्ती, विशिष्टाद्वैतवादी, नैयायिक एवं वैशेषिक ज्ञान को आत्मा का

१. मनुस्मृति, १२।८५

२. द्रष्टव्य-वेदान्तसार (आत्मा सम्बन्धी मत) इन मतों के निरास हेतु द्रष्टव्य-न्यायमञ्जरी, द्वितीय भाग तथा न्यायकुसुमाञ्जलि, १।१५

३. सर्वदर्शन संग्रह, कारिका २३ एवं लंकावतार सूत्र, २।९९-१००

४. वैशेषिक सूत्र, १।१।५ एवं मानमेयनेदय, द्रव्य प्रकरण पृ० १५१

५. आत्मनो ज्ञानस्वरूपत्वम्। —योगवार्तिक, पृ० २१४ एवं सांख्यकारिका, ११, १७

६. (क) विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। —बृहदारण्यकोपनिषद्, ३।९।२८
(ख) तैत्तिरीयोपनिषद्, २।४, ३-६

शोधछात्रा (संस्कृत विभाग), कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल(उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण स्वीकार करते हैं। इसके विपरीत सांख्य, योग और अद्वैत वेदान्त ने आत्मा को निर्गुण कहा है।

भारतीय दर्शनों में आत्मा का चैतन्य से सम्बन्ध, (नित्य या संयोग), नित्यता, परिमाण, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, अनेकत्व, एकत्व एवं इसकी मोक्ष-स्थिति के विषय में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। प्रस्तुत लेख में आत्मा के विषय में जैन दर्शन एवं अन्य भारतीय दर्शनों की तुलना करते हुए जैन दर्शन की समन्वयात्मकता एवं वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

चार्वाकों समेत सभी दार्शनिकों ने आत्मा को चैतन्य से सम्बद्ध स्वीकार किया है।[१] न्याय, वैशेषिक एवं मीमांसा के अनुसार चैतन्य आत्मा से पृथक् हो सकता है, अर्थात् मोक्षावस्था में जीव चैतन्य रहित हो जाता है।[२] जैन दर्शन न्यायादि के समान ज्ञान को आकस्मिक गुण नहीं मानता। वह न्यायादि की तरह ज्ञान को आत्मा का गुण तो मानता है किन्तु ऐसा गुण जो आत्मा से किसी भी दशा में विमुक्त नहीं हो सकता है क्योंकि चैतन्य जीव का अनिवार्य लक्षण है[३] एक तरह से जैनसम्मत आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। आत्मा ज्ञान रूप होने से ज्ञान प्रमाण है एवं ज्ञान समस्त ज्ञेयों को जानने के कारण ज्ञेय-प्रमाण है। समस्त लोकालोक के ज्ञेय होने से ज्ञान सर्वगत हो जाता है। न्याय, वैशेषिक एवं मीमांसा दर्शन में स्वीकृत आत्मा द्रव्य से अनेकत्व एवं द्रव्यवाद के कारण जैनसम्मत आत्मतत्त्व के समान प्रतीत होती है किन्तु ज्ञान गुण से इनमें स्पष्ट भेद हो जाता है।

जैनसम्मत आत्मा न्यायादि की तरह ज्ञान गुण से पृथक् नहीं हो सकता है फिर भी ये बौद्धों के समान जीव और ज्ञान को एकरूप नहीं कहते हैं। अन्यथा ये ज्ञान को ही जीव कह देते। ये सांख्य एवं अद्वैत वेदान्त के समान ज्ञान को (एक प्रकार से) आत्मा का स्वरूप ही मानते हैं। साथ ही सांख्य महत् (बुद्धि) को प्रकृति का विकार मानता है

१. चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः—चार्वाक सूत्र
२. न्यायमञ्जरी, पृ० ७७ (मुक्तात्मा के स्वरूप से सम्बद्ध श्लोक) भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय, पृ० ५८८ में उद्धृत
३. चैतन्यलक्षणो जीवः। —षड्दर्शन समुच्चय, कारिका ४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और पुरुष को सदैव निर्विकार। सांख्यसम्मत पुरुष स्वयं को भ्रमवश कर्ता और भोक्ता समझता है। जैन दर्शन का ज्ञान और आत्मा के विषय में समन्वयात्मक विचार प्रतीत होता है।[1] जीव और ज्ञान परस्पर न इतने भिन्न हैं कि मुक्त जीवों को ज्ञानरहित जड़ पदार्थ कह दिया जाए न इतने अभिन्न हैं कि जीव को ज्ञान मात्र मान लें। जीव ज्ञान से भिन्न भी है और अभिन्न भी। वस्तुतः यह शुद्ध चैतन्य रूप ही है।[2]

जीव की नित्यता के विषय में चार्वाक एवं बौद्धों को छोड़कर अन्य सभी दार्शनिक विचारकों में मतैक्य है किन्तु नित्य आत्मा कर्म-बन्धनों के कारण बार-बार जन्म लेता और मरता रहता है अर्थात् विभिन्न देहादि रूप वस्त्रों को बदलता रहता है।[3] उत्पत्ति और विनाश शरीर का धर्म है जीव का नहीं। देह में स्थित होने से आत्मा को अनित्य कहा जाता है। जन्म-मरण का चक्र कर्मबन्धनों से मुक्त होने तक चलता रहता है। जीव बौद्धों के विज्ञान एवं शून्य के समान क्षणिक एवं शून्यमात्र नहीं है। जैनों के आत्मा की नित्यता की तुलना गीता (२।२४) के विचारों से की जा सकती है।

संक्षेप में आत्मा की नित्यता, जन्म-मरण (देहधर्म), पुनर्जन्मादि के विषय में भारतीय दर्शनों में मतैक्य है। कुछ वैज्ञानिक भी आत्मा की नित्यता के समर्थक हैं। वैज्ञानिक पी० गेड्डेस लिखते हैं कि कुछ ऐसे विद्वानों ने जिनकी मान्यता "मिडीयोराइट वेहिकल थ्योरी" में है--यह सुझाव दिया है कि जीवन उतना ही पुराना है जितना कि जड़।[4]

जीव के कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व के विषय में मतान्तर हैं। नैयायिक एवं वैशेषिक जीवात्मा का कर्तृत्व सत्य स्वीकार करते हैं किन्तु रामा-

१. Commentary on Ṣaḍ-Darśana Samuccaya, Prof. Murty (kārikā 48) p. 63

२. बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा ३ पर श्री ब्रह्मदेव जी की टीका

३. गीता, २।३०

४. Some authorities who have found satisfaction in the Metheorite Vehicle-Theory have also suggested that life is as old as matter. —Evolution, p. 70

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नुज एवं मध्व सम्प्रदाय वाले उसे सत्य होने पर भी नैमित्तिक मानते हैं स्वाभाविक नहीं। सांख्य एवं योग के मतानुसार प्रकृति में वास्तविक कर्तृत्व होने पर भी प्रकृति के संयोग से जीवात्मा में कर्ता होने की प्रतीति होती है अर्थात् आत्मा कर्ता नहीं है। जिस रूप में जीवात्मा कर्ता है उसी रूप में भोक्ता भी है। अद्वैत वेदान्ती कुछ उपाधियों के कारण आत्मा में कर्तृत्व की मिथ्या प्रतीति मानते हैं। जैनों के मत में आत्मा स्वयं कर्ता और भोक्ता है। सांख्य, योग और अद्वैत वेदान्त जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व मिथ्या मानते हैं एवं न्याय, वैशेषिक एवं मीमांसा में जैनों की तरह आत्मा का कर्ता एवं भोक्ता होना सत्य माना गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार आत्मा को यथार्थतः कर्ता और भोक्ता स्वीकार करने से यह उच्चस्तरीय न होकर भौतिक स्तर पर ही रह जाता है।[1] वस्तुतः निश्चयनय से जीव द्रव्य मात्र शुद्ध चैतन्य (ज्योति मात्र) है। व्यवहार नय से उसका कर्ता एवं भोक्ता होना यथार्थ है।

जैन दार्शनिक यथार्थ को अनदेखा नहीं करते क्योंकि संसार में सजीव देह ही कर्ता और भोक्ता दिखाई देता है एवं जड़ देह में चैतन्य सर्वानुभूत है। अतः जैनसम्मत जीव द्रव्य को एकान्ततः भौतिक स्तरीय कहना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता है क्योंकि निश्चयनय की दृष्टि से शुद्ध चैतन्य रूप जीव शांकरवेदान्त के ब्रह्म की तरह अकर्ता, अभोक्ता एवं सच्चिदानंद[2] रूप ही है।

आत्मा के परिमाण की दार्शनिकों ने विभिन्न कल्पनायें की हैं। बौद्धों के अनुसार विज्ञान प्रवाह होने से आत्मा का कोई परिमाण नहीं होता है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग एवं अद्वैत वेदान्त जीवात्मा को 'विभु[3]' कहते हैं। इसके विपरीत रामानुज, मध्व और वल्लभ सम्प्रदाय

---

१. भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र, पृ० १३२

२. प्रवचनसार, १।५३, ५४, ६१, ६८, २।३०

३. (क) भाषा परिच्छेद, प्रत्यक्ष खण्ड, कारिका-२६, तर्कसंग्रह (अन्नंभट्ट-पाद) पृ० १०
(ख) वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली, श्लोक-२२
(ग) ब्रह्मसूत्र भाष्य, १।२।१ (भेदाभेदवादी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले जीव को अणु परिमाणी मानते हैं। चार्वाक, शून्यवादी एवं जैन आत्मा को अणु एवं विभु के बीच में रखते हैं। जैन दार्शनिक आत्मा को सर्वव्यापी एवं अणुरूप न मानकर इनके बीच का मार्ग अपनाते हैं। जैनसम्मत जीव द्रव्य लोकाकाश के समान असंख्यात प्रदेशों का धारक होते हुए भी संसार दशा में देहव्यापी अथवा मध्यम परिमाणविशिष्ट हो जाता है। जिसका जैसा शरीर (छोटा, मध्यम, बड़ा) होगा उतने ही आकार की आत्मा हो जायेगी। जीव को देहव्यापी मानने के कारण जैनों की आलोचना भी की जाती है किन्तु यह आलोचना उचित नहीं लगती है क्योंकि चैतन्य न तो शरीर से बाहर पाया जाता है और न ही शरीर में किसी एक स्थान पर ही मिलता है। चैतन्य तो विद्युत प्रवाह की भाँति समस्त देह में व्याप्त है कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सुखदुःखादि, बन्ध एवं मोक्षादि की व्यवस्था जीव को स्वशरीरव्यापी मानने पर ही सम्भव है सर्वव्यापी और अणु मानने पर नहीं। जैनों ने समुद्घातावस्था में चैतन्य का शरीर से बाहर जाना भी स्वीकार किया है[1] वस्तुतः छोटा या बड़ा होना तो देह का धर्म है आत्मा का नहीं। आत्मा तो प्रकाशमात्र है। जिस स्थान पर आत्मा रूप दीपक स्थित होगा, बाधा न होने पर उस स्थान को प्रकाशित करेगा। वैसे जैन दार्शनिक भी ज्ञान की अपेक्षा से आत्मा को सर्वगत ही मानते हैं[2] किन्तु व्यवहारनय से यथार्थ की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है।

जैनों का आत्मा सांख्य, योग एवं अद्वैत वेदान्त के समान चैतन्य से सदा अविच्छिन्न होते हुए भी न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और मीमांसा के समान यथार्थतः अनेक है। महावीर का कहना है कि आकाश की तरह एक ही जीव की सत्ता के समर्थक यथार्थवादी नहीं हैं। आकाश एक है किन्तु जीव प्रत्येक पिण्ड में भिन्न होते हैं अतः उन्हें सब जगह एक नहीं माना जा सकता है। एक जीव होने पर सुख, इन्द्रियादि की व्यवस्था सम्भव नहीं है। ईश्वर कृष्ण का भी यही विचार है।[3]

१. बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा-१० पर श्री ब्रह्मदेव जी की टीका, प्रज्ञापना सूत्र, ३२९-३४९

२. प्रवचनसार–१।२३, तत्त्वार्थ सूत्र–५।१६, बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा-१०

३. सांख्यकारिका, १८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनों के अनुसार लक्षण (चैतन्य) की दृष्टि से सभी जीव समान हैं किन्तु प्रत्येक शरीर में विशेष-विशेष उपयोग (ज्ञान-दर्शन) का अनुभव होता है। उपयोग के उत्कर्ष-अपकर्ष के तारतम्य से असंख्य भेद हो जाने के कारण जीवों की संख्या अनन्त है।[१] आत्मा स्वभाव से अमूर्त है एवं उसका कार्मण शरीर परमाणु के समान सूक्ष्म होता है। इसलिए शरीरों में प्रविष्ट होते और निकलते समय नहीं दिखाई देता है।[२] वेदान्तियों ने संसार दशा में एक ही जीव[३] का अनेकत्व स्वीकार किया है। वेदों एवं उपनिषदों के अनुसार एक तत्त्व (प्रजापति या ब्रह्म) समस्त सृष्टि का रचयिता है और विभिन्न जीवों में प्राण के रूप में स्थित है। वह अच्छे-बुरे कर्मों से अप्रभावित रहता है।[४] इसके बाद कहा है कि भूतात्मा वास्तविक कर्ता है जो प्रकृति के प्रभाववश अनेक हो जाता है।[५] प्रथम स्थिति ईश्वरवाद की ज्ञापक है। दूसरी स्थिति सांख्य के प्रभाव से प्रथम स्थिति का सुधार अथवा रूपान्तर है। दूसरी स्थिति जैनों के विचार के अधिक समीप है यद्यपि जैन किसी ऐसे एक आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते जो अनेक होने में समर्थ हो।[६]

अद्वैतवेदान्त के सर्वथा विपरीत जैनों ने मोक्ष दशा में भी स्व-सम्मत सत् (अनेकान्तात्मक[७] एवं त्रिकालाबाधित) चित् (चैतन्यमय होने से)–आनन्दमय (ज्ञान से अलौकिक सुख के अभिन्न होने से) आत्मा का अनेकत्व स्वीकार किया है। जीव द्रव्य किसी एक परमात्मा

१. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा-१५८१-३
२. वही, १६८३
३. अस्ति आत्मा जीवाख्यः शरीरेन्द्रियपञ्जराध्यक्षः कर्मफलसम्बन्धी। शाङ्करभाष्य, १।३।१७
४. ऋग्वेद–१०।१२१, अथर्ववेद–१०।७।८, गीता–१३।३३, बृहदारण्यकोपनिषद्–३।८।८
५. History of Indian Philosophy, Creative period (Belvalkar and Ranade), p. 337
६. प्रवचनसार पर टिप्पणी और आंग्लानुवाद, डॉ आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, पृ० ६६
७. उत्पादव्ययध्रौव्युक्तं सत्। —तत्वार्थसूत्र ५।२९

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ब्रह्म या ईश्वर का अंश नहीं हैं। सभी जीवों का (स्वरूपगत समानता होते हुए भी) स्वतन्त्र अस्तित्व है। जैन दर्शन में जीवों पर किसी परमात्मा का नियन्त्रण नहीं है। मुक्त होकर अर्थात् अपने यथार्थ स्वरूप को पाकर सभी जीव परमात्मा हो जाते हैं।[1] सिद्ध जीव ही पूज्य हैं एवं कर्ममुक्त होने पर आत्मा स्वयंभू हो जाता है। यही उसका ईश्वरत्व या दिव्यत्व (अनन्त ज्ञान, दर्शन एवं वीर्य की प्राप्ति) है।

अद्वैत वेदान्त में आत्मा को नित्य, निरुपाधिक, एक, निरवयव एवं व्यापक कहा गया है[2] परन्तु संसार दशा में जीव रूप होकर यही अनित्य, सोपाधिक, अनेक, सावयव, मन-बुद्धि-अहंकारवश प्रत्येक देह में ही व्याप्त माना गया है। इसे व्यक्तिगत चैतन्य भी कहते हैं[3] क्योंकि एक सर्वव्यापी चैतन्य प्रतिशरीर में अंशरूपेण रहता है। जैनसम्मत आत्मा की (अनेकत्व को छोड़कर) वेदान्त के आत्मसिद्धान्त से समानता दिखायी देती है। जैन दर्शन निश्चयनय से आत्मा को नित्य, अमूर्त, निरुपाधिक, ज्ञानरूप होने से व्यापक इत्यादि कहता है[4] और संसार दशा में इसी आत्मा को सोपाधिक (कर्मपुद्गलों से सम्बद्ध), अनित्य, देहपरिमाणी आदि शब्दों से सम्बोधित करता है। जैन दार्शनिकों ने जीवों एवं जड़ पदार्थों की पृथक्-पृथक् सत्ता स्वीकार कर (न्याय, वैशेषिक एवं मीमांसा के समान) यथार्थ एवं आदर्श दोनों की मर्यादा रखी है।

सांख्य के पुरुष से जैनसम्मत आत्मा की तुलना की जा सकती है लेकिन यहाँ भी पर्याप्त मत-वैषम्य प्रतीत होता है। जैनों का आत्मा द्रव्य, सांख्य एवं वेदान्त के आत्मा के समान सर्वदा मुक्त नहीं है।[5] न ही जैन "योग-दर्शन" की तरह अनादि युक्त एक परमात्मा के

---

१. यः परमात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥ —समाधिशतक, ३१

२. बृहदारण्यकोपनिषद्, ३।४।१, प्रश्नभाष्य-६।२ (शङ्करकृत) ऐतरेय भाष्य, २।१

३. वेदान्तसार (सदानन्द)

४. बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा—६, ८, ९ और १३

५. सांख्यप्रवचनभाष्य-१७२, सांख्यसूत्र-३।६५, हस्तामलक स्तोत्र-१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्थक हैं।[१] उनके मत में सभी (मुक्त जीव) परमात्मा प्रारंभ में कर्मोपाधि से युक्त थे। जैनों ने आत्मा के कर्मबन्ध को वास्तविक माना है। सांख्य के पुरुष का प्रकृति से अपने संयोग को अज्ञान या भ्रम से सत्य समझ बैठना युक्तिसंगत नहीं लगता है। जैन मतानुसार जीव सर्वदा मुक्त न होने पर भी मुक्त हो सकता है क्योंकि उसमें कर्मबन्ध से छुटकारा पाने की असीम शक्ति है। सांख्य में आदर्शवादिता है किन्तु जैन मत में आदर्श के साथ-साथ यथार्थ का पुट भी प्राप्त होता है।[२]

जैन दार्शनिक पृथिवी, जल, तेज एवं वायु के कण-कण में जीवन की सत्ता मानते हैं।[३] आधुनिक विज्ञान भी इस विचार का पक्षपाती है कि सम्पूर्ण जगत ऐसी व्यवस्था हैं जो कहीं न कहीं जीवन से सम्बन्धित हैं। अमीबा से लेकर मनुष्य तक सर्वत्र जीवन का झरना बहता है। कहीं-कहीं वह वेगहीन है तो कहीं वेगवान भी है। भावनायें, कल्पनायें आदि प्रवृत्तियाँ एवं अन्यचेतन दशा इसी के अन्तर्गत हैं।[४] जैन भी मानते हैं कि शुद्ध जीवत्व पर पड़े कषायावरण के मोटे, पतले या झीने होने से ज्ञान की अभिव्यक्ति में अन्तर आ जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जैनों का आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त वैदिक दर्शनों के विचारों से अनेक स्थलों पर समानता रखता

---

१. योगसूत्र १।२४, २५, २६

२. Sāṁkhya Realism or Idealism, Dr. Belvalkar. Dayananda Commemoration Volume, Ajmer, 1934 pp. 19-24

३. पञ्चास्तिकाय, गाथा—११०, १११, ११४-१७, बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा—११, १२

४. Throughout the world of animal life there are expressions of something akin to the mind in ourselves. There is from Amoeba upwards a stream of inner and subjective life. It may be only a slender rill, but sometimes it is a strong current. It includes feeling, imagining, purposing. It includes unconscious.

The Great Design, Sir J. A. Thomsan

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है किन्तु किसी एक दर्शन के विचारों से इसका पूर्ण साम्य नहीं है। जैनों ने आत्मा के सम्बन्ध में समन्वयात्मक एवं विशिष्ट सिद्धान्त को जन्म दिया है। उनका आत्मसिद्धान्त बौद्धों के विज्ञान, न्याय-वैशेषिक एवं मीमांसा के चैतन्यरहित (मोक्षदशा में) होने वाले आत्मा द्रव्य, सांख्य-योग के निर्विकारी, सर्वदा मुक्त पुरुष एवं अद्वैत वेदान्त के सच्चिदानन्दमय एक ब्रह्म के सिद्धान्तों से सर्वथा विशिष्ट है। इनका आत्मा सम्बन्धी विचार वैदिक दर्शनों से अनेकशः साम्य रखते हुए भी अपनी विशिष्टता एवं मौलिकता बनाये हुए है। प्रमुख बात यह है कि आत्मा का विवेचन जैन दर्शन में निश्चयनय एवं व्यवहारनय से किया गया है। निश्चयदृष्टि से विचार करते समय जैन दर्शन सांख्य एवं वेदान्त के अत्यन्त निकट लगता है। इतना विशेष है कि अनेकान्तवादी एवं यथार्थवादी होने से वह व्यवहारनय को पूर्णतः नहीं नकारता; क्योंकि वह परिणामी नित्यता का समर्थक है, विवर्तवाद या कूटस्थनित्यता का समर्थक नहीं। वस्तु का निज स्वरूप कभी नहीं बदलता किन्तु पर्याय बदलते रहते हैं। इसीलिए जीव का चैतन्य कभी नहीं बदलता किन्तु उसमें पर्याय होते रहते हैं। आत्मा में कर्म, कर्तृत्व आदि भी उपचार से स्वीकृत हैं।

जैनों के समान आधुनिक विज्ञान ने भी पेड़, पौधों, पृथिव्यादि के कणों में (अस्पष्ट रूप में) जीवत्व सिद्ध किया है। सुदूर अतीत में जबकि वैज्ञानिक परीक्षणों का सर्वथा अभाव था। इस विचार की उत्पत्ति जैन विचारकों की सूक्ष्म, यथार्थ एवं विश्लेषणपरक मनीषा की स्पष्ट परिचायक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपभ्रंश के जैन पुराण और पुराणकार

—रीता बिश्नोई

अनेक भाषा शास्त्रियों के अनुसार अपभ्रंश भाषा मध्यकालीन प्राकृत की अन्तिम और वर्तमान भारतीय भाषाओं की आद्य अवस्थाओं के मध्य की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। अपभ्रंश प्रायः सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी रही है अपभ्रंश से ही हिन्दी आदि भाषाओं का विकास हुआ, इस दृष्टि से इस भाषा के स्वरूप का बड़ा महत्त्व है।

अपभ्रंश का अर्थ है--जन बोली। जन बोली से अभिप्राय सामान्य लोगों की बोल-चाल की भाषा से है। वैयाकरणों की भाषा में अपभ्रंश का अर्थ अपशब्द है और अपशब्द का अर्थ है— ठीक से उच्चारित न होने वाले (बिगड़े) शब्द। लोक भाषा में इसका रूढ अर्थ है— गिरना, अथवा खिसकना।[1] आचार्य भरतमुनि ने उकार बहुला कहकर जिस भाषा का परिचय दिया है, वह हिमाचल प्रदेश से लेकर सिन्ध तथा समस्त उत्तर भारत में प्रचलित थी—

हिमवत् सिन्धु सौवीरान् ये जनाः समुपाश्रिताः।
उकार बहुला तज्ज्ञस्तेषु भाषा प्रयोजयेत् ॥
नाट्य शास्त्र, १७, ६२।

इससे स्पष्ट है कि अपभ्रंश बोलचाल की भाषा थी और इस उत्तर भारतीय बोली को ही वैयाकरणों ने अपभ्रंश नाम दिया है।

अपभ्रंश में अनेक विधाओं में मानव जीवन से सम्बन्धित कई विषयों पर लिखा गया है यथा–मुक्तक, प्रबन्ध काव्य, चरित काव्य, कथा और पुराण आदि। जैन साहित्य में अपभ्रंश भाषा में अनेक पुराणों की रचना हुई। ये सभी पुराण जैन साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन अपभ्रंश पुराणों में पौराणिक महापुरुषों अथवा अधिकतर त्रेसठ शलाकापुरुषों का जीवन चरित वर्णित है। बारह या तेरह

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्धियों से लेकर लगभग सवा सौ सन्धियों तक के पुराण काव्य उपलब्ध होते हैं। यह एक विचित्र संयोग है कि संस्कृत की भाँति अपभ्रंश पुराण भी राम-कथा को लेकर प्रारम्भ होते हैं। यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि जैन अपभ्रंश साहित्य में एक ही नाम के अनेक पुराण उपलब्ध होते हैं जो कि विभिन्न आचार्यों द्वारा भिन्न-भिन्न शताब्दियों में लिखे गये हैं। इन पुराणों का पुराणकारों सहित परिचय इस प्रकार है—

अपभ्रंश साहित्य के सर्वाधिक चर्चित एवं यशस्वी महाकवि स्वयम्भू है। इनको अपभ्रंश पुराण साहित्य का आदि कवि माना जाता है। स्वयम्भू की कृतियों में मिले कतिपय उल्लेखों के आधार पर वे कर्नाटक के साहित्य घराने के पिता मारुतदेव और माँ पद्मिनी की सन्तान थे। इनकी दो पत्नियां थीं, जो साहित्य साधना में इनकी सहायिका थीं। त्रिभुवन इनके पुत्र थे, जिन्होंने इनकी अधूरी कृतियों को पूरा किया।[1] पं० नाथूराम प्रेमी के अनुसार इनका समय वि० सं० ७३४ से ८४० के बीच माना जा सकता है।[2] जबकि डा० भायाणी ने इनका काल ८४०-९२० ई० अनुमानतः निर्धारित किया है।[3] महाकवि स्वयम्भू रचित दो पुराण उपलब्ध होते हैं--'पउमचरिउ' तथा 'रिट्ठणेमिचरिउ'।

स्वयम्भू द्वारा रचित पउमचरिउ को 'रामायण पुराण' भी कहते हैं।[4] इसमें ९० सन्धियाँ हैं—विद्याधर काण्ड में २०, अयोध्या काण्ड में २२, सुन्दर काण्ड में १४, युद्धकाण्ड में २१ और उत्तर काण्ड में १३। यह ग्रन्थ १२ हजार श्लोक प्रमाण है। इसमें ८३ सन्धियों की रचना स्वयम्भू देव ने की तथा शेष ७ सन्धि उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयम्भू ने लिखी है।[5]

---

१. जैन विद्या, स्वयंभू विशेषांक, पृ० ३०

२. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८७

३. जैन विद्या, अप्रैल १९८४, पृ० १०

४. जिनरत्नकोश, पृ० ३३२

५. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पउमचरिउ की हस्तलिखित प्रतियाँ श्री महावीर जी के जैन विद्या संस्थान[1]; भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना; आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर; दिगम्बर जैन गोदी का मन्दिर, साँगानेर, जयपुर तथा दिगम्बर जैन तेरापन्थी बड़ा मन्दिर जयपुर में उपलब्ध हैं।[2]

रिट्ठणेमिचरिउ कवि स्वयम्भू द्वारा महाभारत विषयक कथा को लेकर लिखा गया है। इस ग्रन्थ का मुख्य आधार कृष्ण और नेमिनाथ तीर्थङ्कर की कथा है। इसमें कुल ११२ सन्धियाँ (सर्ग) हैं तथा तीन काण्ड हैं—यादव, कुरु और युद्ध। इस ग्रन्थ की प्रथम ९९ सन्धियाँ स्वयम्भू कृत हैं और शेष उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयम्भू कृत। यादव काण्ड में कृष्ण के जन्म, बालक्रीड़ा, विवाहादि का वर्णन; कुरु काण्ड में कौरव-पाण्डवों के जन्म, शिक्षण, परस्पर विरोध, द्यूत-क्रीड़ा तथा वनवास आदि का वर्णन तथा युद्ध-काण्ड में कौरव-पाण्डवों के बीच हुये युद्ध का रोचक वर्णन है।[3] इस पुराण की रचना में कवि को ६ वर्ष ३ माह ११ दिन लगे थे।

रिट्ठणेमिचरिउ की हस्तलिखित प्रतियाँ बम्बई के ऐलक पन्ना लाल सरस्वती भवन; पूना के भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट[4] तथा सरस्वती भवन ब्यावर; जयपुर के दिगम्बर जैन छोटे दिवान जी मन्दिर और बधीचन्द्र दिगम्बर जैन मन्दिर[5] में उपलब्ध हैं।

अपभ्रंश की प्रबन्ध काव्य धारा में महाकवि स्वयम्भू देव के पश्चात् जिस महाकवि को सर्वाधिक गौरव एवं प्रसिद्धि मिली है वे हैं महाकवि पुष्पदन्त। आप ईसा की दशवीं शताब्दी के विद्वान् हैं। महाकवि पुष्पदन्त काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे इनके पिता का नाम केशव भट्ट और माता का नाम मुग्धा देवी था।[6] आरम्भ में कवि

१. जैन विद्या, स्वयंभू विशेषांक, पृ० ३०
२. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १३९
३. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १५७
४. जैन विद्या, स्वयम्भू विशेषांक, पृ० ३१
५. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १७५-१७६
६. जैन साहित्य और इतिहास, ३०१-३०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्पदन्त शैवमतावलम्बी थे और इन्होंने भैरव नामक किसी शैव राजा की प्रशंसा में काव्य का प्रणयन भी किया था।[१] बाद में पुष्पदन्त किसी जैन मुनि के उपदेश से जैन हो गये थे और मान्यखेट में आकर मन्त्री भरत के अनुरोध से जिन-भक्ति से प्रेरित होकर काव्य सृजन में प्रवृत्त हुए।[२] महाकवि पुष्पदन्त कृत केवल एक पुराण उपलब्ध होता है और वह है महापुराण।

यशस्वी कवि पुष्पदन्त द्वारा रचित महापुराण अपभ्रंश भाषा की ऐसी विशिष्ट कृति है जिसमें जैन-धर्म, जैन-दर्शन, संस्कृति, समाज एवं कला का सजीव चित्रण तो हुआ ही है, साथ ही हिन्दू धर्म में बहुमान्य राम एवं कृष्ण की कथाओं का भी विशद चित्रण हुआ है। यह महापुराण दो खण्डों में विभक्त है--आदि पुराण और उत्तर पुराण। ये दोनों खण्ड अलग-अलग ग्रन्थ रूप में मिलते हैं। इन दोनों खण्डों में त्रेसठ शलाकापुरुषों के चरित वर्णित हैं। प्रथम खण्ड में आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव का तथा दूसरे खण्ड में शेष २३ तीर्थङ्करों का और उनके समययुगीन अन्य महापुरुषों नारायण, प्रतिनारायण बलभद्र आदि की जीवन गाथा वर्णित हैं। आदिपुराण में ८० और उत्तर पुराण में ४२ सन्धियाँ (सर्ग) हैं। इनका श्लोक परिमाण २० हजार है।[३] जिनरत्नकोष में पुष्पदन्त रचित अपभ्रंश महापुराण १०२ सन्धियों में विभक्त बतलाया गया है।[४] पं० नाथूराम प्रेमी के अनुसार विभिन्न प्रमाणों से ज्ञात होता है कि शक सं० ८८१ में पुष्पदन्त मेलपाटी में भरत महामय से मिले और उनके अतिथि हुए। इसी साल इन्होंने महापुराण शुरू करके उसे शक सं० ८८७ में समाप्त किया।[५]

महाकवि पुष्पदन्त कृत उत्तर पुराण में पद्मपुराण (रामायण) और हरिवंशपुराण (महाभारत) भी सम्मिलित हैं ये पृथक-पृथक ग्रन्थ रूप

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य (डा० देवेन्द्र कुमार जैन) पृ० ६८
२. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ४, पृ० १०५
३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३१२-३१३
४. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२
५. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में भी प्राप्त हुए हैं। हरिवंशपुराण की हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट–पूना में उपलब्ध है[1] तथा यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई से वि०सं० १९९७ में प्रकाशित है।

महापुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ ला० द० शोध संस्थान—अहमदाबाद[2] तथा डा० कासलीवाल के अनुसार—भगवान दि० जैन मन्दिर अजमेर, दिगम्बर जैन बड़ा बीसपन्थी मन्दिर—दौसा, दि० जैन तेरह पन्थी मन्दिर—दौसा, दिगम्बर जैन सम्भवनाथ मन्दिर उदयपुर में उपलब्ध हैं।[3] भट्टारकीय ग्रन्थ भण्डार—नागौर में भी इस पुराण की प्रतियाँ उपलब्ध हैं।[4]

दसवीं शताब्दी में ही आचार्य पद्मकीर्ति ने तेइसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के जीवन चरित को लेकर पार्श्वपुराण की रचना की। यह १८ सन्धियों में विभक्त है। इसकी रचना संवत् ९९२ में पूर्ण की गयी। कवि ने अपनी गुरु परम्परा में सेनसंघ के चन्द्रसेन, माधवसेन और जिनसेन का उल्लेख किया है।[5] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार पार्श्वपुराण की समाप्ति शक सं० ९९९ कार्तिक मास की अमावस्या को हुई है। इसमें नाना प्रकार के छन्दों से सुहावने ३१० कडवक तथा ३३२३ से कुछ अधिक पंक्तियाँ इस ग्रन्थ का प्रमाण है।[6]

पद्मकीर्ति कृत पार्श्वपुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ दिगम्बर जैन दीवान जी मन्दिर, कामा; सरस्वती भवन; नागौर; आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर और दिगम्बर जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर में उपलब्ध हैं।[7]

महाकवि धवल भी दसवीं शताब्दी के विद्वान् हैं इनके द्वारा रचित हरिवंश पुराण[8] १२२ सन्धियों में समाप्त हुआ है। इसमें कौरव-

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १७४
२. वही, पृ० १५६
३. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची (पञ्चम भाग) पृ० २९४
४. भट्टारकीय दिगम्बर ग्रन्थ भण्डार सूची नागौर, भाग ३, पृ० २०२
५. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १५७
६. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ३, पृ० २०९-२१०
७. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १४७
८. जिनरत्नकोश, पृ० ४६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाण्डव, श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों का जीवन चरित्र वर्णित है। अपने विषय वर्णन के लिये कवि ने आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराण का आश्रय लिया।[१]

महाकवि धवल विप्रवर्ण के थे। उनके पिता का नाम सूर, माता का नाम केसुल्ल और गुरु का नाम अम्बसेन था। ग्रन्थ की उत्थानिका में इन्होंने अनेक आचार्यों और उनकी ग्रन्थ रचनाओं का उल्लेख किया है उसमें काल की दृष्टि से सबसे अन्तिम कवि 'असग' है जिन्होंने अपना 'वीर चरित' शक सं० ९१० ई० सन् ९८८ में समाप्त किया था अतः यही कवि के काल की पूर्वावधि है। सम्भवतः हरिवंश पुराण के रचना का काल १०वीं शती होगा।[२] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के मत से धवल कवि का समय शक संवत् की १० वीं शती का अन्तिम पाद या ११वीं शती का प्रथम पाद सम्भव है।[३]

कवि धवल कृत हरिवंश पुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ श्री दिगम्बर जैन नया मन्दिर, दिल्ली; तेरहपन्थी दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर शास्त्र भण्डार, जयपुर; बधीचन्द्र दिगम्बर जैन मन्दिर, जय पुर, दिगम्बर जैन मन्दिर पाटोदी शास्त्र भण्डार, जयपुर में उप-लब्ध है।[४]

वि० सं० १०५० के लगभग हुये कवि देवदत्त का नाम भी अपभ्रंश के रचयिताओं में मिलता है। कवि देवदत्त ने शान्तिनाथ पुराण की रचना की है।[५]

तेरहवीं शताब्दी में रचित पुराणों के अन्तर्गत अमरकीर्तिगणि कृत नेमिनाथ पुराण का उल्लेख जैन पुराणों में मिलता है।[६] अपभ्रंश-काव्य के रचयिताओं में अमरकीर्तिगणि का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि की मुनि, गणि और सूरि उपाधियाँ थी जिससे ज्ञात होता है कि वे गृहस्थाश्रम त्याग कर दीक्षित हो गये थे। उनकी गुरु परम्परा से

१. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १५५
२. वही, पृ० १५४-१५५
३. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा, भाग ४, पृ० ११९
४. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ पृ० १७४
५. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ४, पृ० २४३
६. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवगत होता है कि वे माथुर संघी चन्द्रकीर्ति के मुनीन्द्र शिष्य थे। उनकी गुरु परम्परा इस प्रकार है—अमितगति—शान्तिसेन—अमसेन—श्रीषेण—चन्द्रकीर्ति—अमरकीर्ति।[1]

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार[2] अमरकीर्तिगणि कृत नेमिनाथ पुराण में २५ सन्धियाँ हैं जिनकी श्लोक संख्या ६८९५ है। इस ग्रन्थ को कवि ने वि० सं० १२४४ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को समाप्त किया है। वि० सं० १५१२ की इसकी प्रति सोनगिर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अपभ्रंश भाषा के कवियों में महाकवि रइधू का नाम उल्लेखनीय है। रइधू काष्ठसंघ के माथुरगच्छ की पुष्करगणीय शाखा से सम्बन्ध थे। अपभ्रंश, संस्कृत और हिन्दी में इनकी ४० के लगभग रचनायें मिलती हैं। इनके पिता का नाम हरिसिंह, पितामह का नाम संघपति देवराज, माता का नाम विजयश्री तथा पत्नी का नाम सावित्री था, इनके एक पुत्र भी था जिसका नाम उदयराज था।[3] डा० राजाराम जैन ने इनका समय वि० सं० १४५७-१५३६ (ई० १४००-१४७०) माना है।[4] इनके द्वारा रचित अनेक पुराण उपलब्ध होते हैं—

१. **पद्मपुराण**—रामकथा को लेकर इन्होंने पद्मपुराण की रचना ई० श० १५ में की। इसमें रामकथा का जैन परम्परा के अनुसार वर्णन किया गया है। पद्मपुराण की हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में उपलब्ध है।[5]

२. **हरिवंश पुराण**—कौरव-पाण्डवों की कथा को लेकर इन्होंने इस हरिवंश पुराण की रचना की।[6] डा० विद्याधर जोहरापुरकर के अनुसार रइधू कृत इस हरिवंशपुराण से पता चलता है कि इनका मठ

१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ४, पृ० १५४-१५५
२. वही, पृ० १५८
३. वही, पृ० १९८-१९९
४. महाकवि रइधू के साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० १२०
५. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १४०
६. जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश, भाग ३, पृ० ४०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोनागिरि में था।[1] इस पुराण में १४ सन्धियाँ तथा ३०२ कडवक हैं[2] जिनमें ऋषभदेव चरित, हरिवंशोत्पत्ति वसुदेव, बलभद्र, नेमिनाथ पाण्डवों आदि का वर्णन किया गया है।

इस हरिवंश पुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ कुरवाई (सागर) के जैन मन्दिर में तथा ब्यावर के सरस्वती भवन, तथा आगरा के जैन सिद्धान्त भवन में उपलब्ध हैं।[3]

३. **पार्श्वपुराण**—तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वपुराण के जीवन चरित को लेकर महाकवि रइधू ने इस पार्श्वपुराण की रचना की।[4] इसकी कथावस्तु ७ सन्धियों में विभक्त है। रइधू की समस्त कृतियों में अपभ्रंश भाषा का यह काव्य श्रेष्ठ, सरल एवं रुचिकर है।

इस पार्श्व पुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ ब्यावर के ऐ० पन्नालाल सरस्वती भवन, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर और दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, आगरा में उपलब्ध है।[5] डा० कासलीवाल के अनुसार[6] दिगम्बर जैन मन्दिर बोसली कोटा में भी इस पुराण की प्रति उपलब्ध है।

महाकवि रइधू विरचित 'महावीर पुराण' तथा 'बलभद्र' का भी उल्लेख मिलता है। 'महावीर पुराण' की हस्तलिखित प्रति कूंचा सेठ का दिगम्बर जैन मन्दिर दिल्ली में उपलब्ध है।[7] तथा बलभद्र पुराण की हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर; ठोलियों का दिगम्बर जैन मन्दिर, जयपुर तथा धर्मपुरा दिगम्बर जैन मन्दिर, दिल्ली में उपलब्ध है।[8] डा० राजाराम जैन ने विभिन्न स्रोतों के आधार पर अभी तक महाकवि रइधू की ३७ रचनाओं का अन्वेषण

---

१. भट्टारक सम्प्रदाय, लेखांक ५९४
२. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ४, पृ० २०२
३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १७५
४. जिनरत्नकोश, पृ० २४६
५. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १४६
६. राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची (पंचम भाग) पृ० २९०
७. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १५६
८. वही, पृ० १४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है। जिनमें पुराण साहित्य के अन्तर्गत रइधू कृत 'महापुराण' और 'मेहेसरचरिउ' अपर नाम आदिपुराण का उल्लेख भी मिलता है[1]।

पन्द्रहवीं शताब्दी के कवियों में मुनि यशःकीर्ति का नाम भी उल्लेखनीय है। यशकीर्ति काष्ठसंघ माथुरगच्छ के गुणकीर्ति के के पट्ट शिष्य थे। डा० विद्याधर जोहरापुरकर ने इनका समय संवत् १४८६-१४९७ माना है[2]। पर गोपाचल के मूर्तिलेखों में इनका निर्देश वि० १५१० तक पाया जाता है अतएवं इनका समय वि० सं० पन्द्रहवीं शती का अन्तिम भाग तथा सोलहवीं शती का पूर्वभाग है[3]। मुनि यशःकीर्ति भट्टारक द्वारा रचित अपभ्रंश भाषा में दो पुराण उपलब्ध होते हैं—हरिवंश पुराण और पाण्डव पुराण।

१. हरिवंश पुराण—इस हरिवंश पुराण में १३ सन्धियाँ (सर्ग) और २७१ कडवक हैं[4] जिनमें हरिवंश की उत्पत्ति आदि का वर्णन किया गया है। यह पुराण वि० सं० १५०० या १५२० में रचित है। यह योगिनीपुर, दिल्ली में अग्रवालवंशी व गर्गगोत्री दिउढा साहू की प्रेरणा से लिखा गया था[5]।

यशःकीर्ति कृत इस हरिवंश पुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ दिल्ली पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिर, जयपुर के दिगम्बर जैन तेरहपन्थी बड़ा मन्दिर दिगम्बर जैन पटोदी मन्दिर, ठोलियों का दिगम्बर जैन शास्त्र भण्डार, आमेर शास्त्र भण्डार, नागौर का दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, उदयपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर, सम्भवनाथ, और ब्यावर के सरस्वती भवन में उपलब्ध हैं।[6]

२ पाण्डव पुराण—यशःकीर्ति ने पाण्डव पुराण की रचना वि० सं० १४९७ में की है। इस पुराण में ३४ सन्धियाँ हैं जिनमें पांचों पाण्डवों

---

१. महाकवि रइधू के साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ० ४९
२. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० २४६
३. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ३, पृ० ४१०
४. वही, पृ० ४११
५. भारतीय संस्कृति के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० १५५
६. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १७४-१७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और कौरवों के साथ श्री कृष्ण का चरित भी अंकित किया गया है। रचना की भाषाशैली प्रौढ़ है। इस ग्रन्थ की रचना मुवारिक शाह के राज्यकाल में साधु वील्हा के पुत्र हेमराज की प्रेरणा से की गयी है[1]।

इस पुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ जयपुर के आमेर शास्त्र भंडार, दिल्ली के पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिर, ब्यावर के दिगम्बर जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन तथा दौसा के दिगम्बर जैन तेरहपन्थी मन्दिर में उपलब्ध हैं[2]।

हरिवंश पुराण और पाण्डव पुराण के रचयिता भट्टारक यशःकीर्ति साधु थे और साधु होने की वजह से स्थान-स्थान पर बिहार करते रहते थे। इन दोनों ग्रंथों की रचना इन्होंने नागौर और उदयपुर में की थी[3]।

पन्द्रहवीं शताब्दी में ही अपभ्रंश भाषा में रचित एक अन्य हरिवंश पुराण जैन साहित्य में उपलब्ध होता है। यह पुराण आचार्य श्रुतकीर्ति द्वारा रचित है। इसमें ४४ सन्धियों (सर्ग) में कौरव-पाण्डव आदि का वर्णन किया गया है। डा० हीरालाल जैन के अनुसार यह पुराण वि० सं० १५५३ में पूर्ण हुआ[4]। लेकिन डा० विद्याधर जोहरापुरकर के अनुसार भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति के शिष्य श्रुतकीर्ति ने सं० १५५२ में ग्यासुद्दीन के राज्य काल में जेरहट में हरिवंश पुराण लिखा[5]। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार जेहरट नगर के नेमिनाथ चैत्यालय में हरिवंश पुराण की रचना वि० सं० १५५२ माघ कृष्ण पञ्चमी सोमवार के दिन हस्त नक्षत्र में की थी[6]।

श्रुतकीर्ति कृत इस हरिवंश पुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर, जैन सिद्धान्त भवन, आरा, और दिगम्बर जैन ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावर में उपलब्ध हैं[7]।

---

१. तीर्थंकर महावीर ओर उनकी आचार्य परम्परा, भाग ३, पृ० ४११
२. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १४५-१४६
३. जैन विद्या नवम्बर ८५, पृ० ३ (प्रास्ताविक से उद्धृत)
४. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १५५
५. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० लेखांक ५२३
६. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ३, पृ० ४३१
७. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० १७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलहवीं शताब्दी में दूसरे तीर्थङ्कर के चरित को लेकर विजयसिंह द्वारा अजितनाथ पुराण की रचना की गयी। कवि विजय सिंह ने अजित पुराण की प्रशस्ति में अपना परिचय दिया है। कवि के पिता का नाम दिल्हण और माता का नाम राजमति था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा का निर्देश नहीं किया है। अजित पुराण की समाप्ति वि०सं० १५०५ कार्तिक पूर्णिमा के दिन की है[1]। इस ग्रन्थ में १० सन्धियाँ हैं। इस ग्रंथ की रचना कवि ने महाभव्य कामराज के पुत्र पण्डित देवपति की प्रेरणा से की है।[2]

इस पुराण की हस्तलिखित प्रतियाँ श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, जयपुर तथा दिगम्बर जैन शास्त्र भण्डार, मौजमाबाद (जयपुर) में उपलब्ध हैं[3]।

सोलहवीं शताब्दी में ही महिन्दु कृत शान्तिनाथ पुराण का उल्लेख जैन साहित्य में मिलता है[4]। कवि महिन्दु या 'महीचन्द्र' इल्लराज के पुत्र हैं। इससे अधिक इनके परिचय के सम्बन्ध में कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। अपने ग्रन्थ शान्तिनाथ पुराण की प्रशस्ति में कवि ने योगिनपुर (दिल्ली) का सामान्य परिचय कराते हुए काष्ठसंघ के माथुरगच्छ और पुष्करगण के तीन भट्टारकों का नामोल्लेख किया है—यशःकीर्ति, मलयकीर्ति और गुणभद्रसूरि। भट्टारकों की उपर्युक्त परम्परा अंकन से यह ध्वनित होता है कि कवि महीन्दु के गुरु काष्ठ-संघ माथुरगच्छ और पुष्कर गण के आचार्य ही रहे हैं। तथा कवि का सम्बन्ध भी उक्त भट्टारक—परम्परा के साथ है। कवि ने ग्रन्थ की रचना काल स्वयं ही बतलाया है कि इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १५८७ मुगल बादशाह बाबर के राज्यकाल में समाप्त हुई[5]। शान्ति-नाथ पुराण की कथावस्तु १३ परिच्छेदों में विभक्त है। पद्य-प्रमाण ५००० के लगभग हैं[6]।

---

१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ४, पृ० २२७
२. वही, पृ० २२८
३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० ११३-११४
४. वही, पृ० १९०
५. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग ४, पृ० २२५
६. वही, पृ० २२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६ वीं शताब्दी में ही कवि शाह ठाकुर अपभ्रंश भाषा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं।

कवि ठाकुर ने शान्तिनाथ पुराण की प्रशस्ति में अपना परिचय दिया है। अपनी गुरु परम्परा में बताया है—भट्टारक पद्मनन्दि की आम्नाय में होने वाले भट्टारक विशालकीर्ति के शिष्य थे। इन्के पितामह का नाम साहू सील्हा और पिता का नाम खेत्ता था। ये खण्डेलवाल जाति के थे तथा गोत्र लोहड़िया था यह लोवा इणिपुर के निवासी थे[1]। इनके द्वारा रचित दो पुराण उपलब्ध है—

१. **शान्तिनाथ पुराण**—इस पुराण में ५ सन्धियाँ हैं जिनमें १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का जीवन वृत्त वर्णित है इसकी रचना वि० सं० १६५२ भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन चकत्तावंश जलालुद्दीन अकवर बादशाह के शासनकाल में पूर्ण हुई थी[2]।

२. **महापुराण कलिका**—इस पुराण में २७ सन्धियाँ है जिनमें ६३ शलाकापुरुषों की गौरव कथा गुम्फित है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १६५० में मानसिंह के शासन में ही हुई थी[3]।

ठाकुर द्वारा रचित "शान्तिनाथ पुराण" की हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में उपलब्ध है।

इनके अतिरिक्त कवि देवचन्द्र कृत "पासपुराण" की हस्तलिखित प्रति सरस्वती भवन, नागौर में उपलब्ध है[4]।

इस प्रकार हम पाते हैं कि अपभ्रंश भाषा में उपलब्ध पुराणों की परम्परा का आरम्भ ७वीं-८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि स्वयम्भू द्वारा हुआ, पश्चात् ये पुराण निरन्तर १७वीं शताब्दी तक लिखे जाते रहे हैं।

द्वारा/श्री बलराम सिंह बिश्नोई
२१, पटेल नगर, मुजफ्फरनगर

---

१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ० २३३-२३४
२. वही, पृ० २३५
३. *अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ*, पृ० १६३
४. वही, पृ० १४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोटिशिला तीर्थ का भौगोलिक अभिज्ञान

* —डा० कस्तूरचन्द जैन

जैन-दर्शन और तत्त्वज्ञान की भक्तिपरक अभिव्यक्ति निर्वाणक्षेत्र की पूजा-परंपरा में दिखाई देती है। निर्वाण-क्षेत्र वे स्थल हैं, जहाँ से तीर्थंकरों और सिद्धों को निर्वाण प्राप्त हुआ है। इन्हें हम सिद्धक्षेत्र भी कहते हैं। ये सिद्धक्षेत्र ही जैन परम्परा के वास्तविक तीर्थ हैं। अष्टापद, चम्पापुरी, उर्जयन्त, पावापुरी और सम्मेद शिखर—ये पाँच स्थान चौबीस तीर्थंकरों के निर्वाण-स्थल हैं तथा आर्यखंड के अगणित सिद्धों की सिद्ध-भूमियों का अन्तर्भाव "कोटिशिला" में होता है। कोटिशिला केवल एक प्रतीक सत्ता है अथवा अन्य सिद्ध-क्षेत्रों की भाँति उसकी अपनी कोई भौगोलिक पहचान है—यह प्रश्न शताब्दियों से अब तक अनुत्तरित ही रहा है।

"अभिधानराजेन्द्र" में गंगा, सिंधु, वैताढ्य आदि शाश्वत पदार्थों की तरह कोटिशिला को शाश्वत कहा गया है। भरत क्षेत्र में हिमालय से निकलकर गंगा और सिन्धु नदियाँ, पूर्व और पश्चिम में समुद्र की ओर बहती हैं। मध्य में वैताढ्य, विजयार्ध अथवा विन्ध्य पर्वत है। गंगा, सिन्धु और विन्ध्य के द्वारा भरत क्षेत्र के छह खंड हो गये हैं। दुषमा-सुषमा नामक चौथे काल में, भरत क्षेत्र में ६३ शलाका-पुरुष हुए, जिनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रति-वासुदेव सम्मिलित हैं। सोलहवें तीर्थङ्कर शान्तिनाथ से लेकर इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ तक—छह तीर्थङ्करों के तीर्थकाल में करोड़ों मुनि कोटिशिला से मुक्त हुए हैं। त्रिपृष्ठ आदि नव वासुदेव क्रमशः श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ के तीर्थकाल में हुए थे और उन सबने अपने बाहुबल की परीक्षा के लिये कोटिशिला को ऊपर उठाने का उपक्रम किया था। अन्तिम नारायण कृष्ण ने कोटिशिला को भूमि से चार अंगुल तक ऊपर उठाया था।

पुराणेतिहास में कोटिशिला भरतक्षेत्र के मध्य में उसी प्रकार परिकल्पित है, जैसे जम्बूद्वीप के मध्य में मेरु की रचना मानी गई है। मन्दार पर मेरु की भांति वैताढ्य पर कोटिशिला सुशोभित है। जैसे

* अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, शासकीय तिलक महाविद्यालय कटनी, म०प्र०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभशैल चक्रवर्तियों का मान-मर्दन करता है, वैसे ही कोटिशिला अर्ध-चक्री वासुदेवों की शक्ति का निकष बनती है। मेरु, ऋषभ और वैताढ्य ही जैन भक्ति-साधना और वास्तु-विधान के प्रारम्भिक आश्रय स्थल रहे हैं, जहाँ गुफा रूपी अकृत्रिम चैत्यालय अनन्त काल से विद्यमान हैं। वैताढ्य के सिद्धकूट पर दिव्य जिन-भवनों का आयाम एक कोश माना गया है और इसलिये दिव्य जिनसदन के रूप में शाश्वत कोटिशिला का विस्तार एक कोश अथवा एक योजन ही परिकल्पित है।

उपर्युक्त विवरण से यह तो स्पष्ट है कि कोटिशिला की भौगोलिक अवधारणा पर अति प्राचीनकाल से विश्वास चला आ रहा है। प्राकृत निर्वाणकाण्ड के अनुसार कोटिशिला कलिंगदेश में अवस्थित है, जबकि विविधतीर्थकल्प का लेखक मगध में इसकी संदेहपूर्ण उपस्थिति का संकेत देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोलहवें से इक्कीसवें तीर्थंकरों के जन्म स्थान मगध-क्षेत्र से सम्बद्ध होने के कारण कोटिशिला की परिकल्पना मगध में कर ली गई। इसी प्रकार नवनारायणों के कथानक ने कोटिशिला को कलिंग देश में प्रतिष्ठित किया, क्योंकि प्रथम नारायण त्रिपृष्ठ का सम्बन्ध पोदनपुर (कलिंग) से था। प्राचीन सन्दर्भों में मगध और कलिंग गतिशील देशवाचक संज्ञायें रही हैं और इनके आधार पर आज किसी निश्चित स्थान को कोटिशिला की संज्ञा नहीं दी जा सकती। सच तो यह है कि शाश्वत कोटिशिला अनन्त नाम-रूपों में अवतरित होती रही है और सिद्ध क्षेत्रों की परवर्ती विकास-परम्परा ने अब उसके भौगोलिक अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है।

प्रश्न यह है कि कोटिशिला तीर्थ क्या सचमुच विलुप्त हो चुका है? उत्तर है—नहीं। अनादि लोक-परम्परा उसे आज तक कोटि पहाड़ के रूप में जीवित रखे हुए है। कोटि पहाड़ पर अवस्थित 'सिद्ध गुफा' और "टाठीबेर" नामक स्थल आज भी बुन्देलखण्ड में जन-जन की श्रद्धा का आश्रय बने हुए हैं और ये भग्न शाश्वत कोटिशिला के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं। भौगोलिक मानचित्र पर "कोटि पहाड़" ७९° १' पूर्वी और २४° ३५' उत्तरी भू-रेखाओं पर अवस्थित है। वर्तमान बड़ागाँव से प्रारम्भ होकर उत्तर की ओर भदौरा तक लगभग ४ कि.मी. की यह पर्वत शृंखला समुद्र सतह से १३१३ फीट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊँची है। बड़ागाँव के दक्षिण में यह पर्वत शृंखला दशार्ण नदी के मुहाने तक जाकर विलुप्त हो जाती है। कोटि पहाड़ पर अनेक प्राचीन जैन मन्दिर गुफायें, चरण-चिह्न और पुरावशेष सुरक्षित हैं, जो अनायास ही उसे कोटितीर्थ घोषित करते हैं। आज यह तीर्थ "बड़ागाँव सिद्धक्षेत्र" के रूप में पुनर्प्रतिष्ठित हो रहा है। प्राचीष जैन तीर्थों के मानचित्र पर इसके उत्तर–पूर्व में खजुराहो, उत्तर–पश्चिम में अहार और चन्देरी, दक्षिण-पूर्व में रेशंदीगिरि तथा कुण्डलपुर और दक्षिण-पश्चिम में विदिशा तथा ग्यारसपुर तीर्थ-क्षेत्र अवस्थित हैं।

"कोटिशिलातीर्थकल्प" में आचार्य जिनप्रभसूरि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के इस मत को उद्धृत किया है कि कोटिशिला "दसन्नपव्वय समीवि" अर्थात् दशार्ण पर्वत के निकट स्थित है। दशार्ण पर्वत से पूर्वाचार्यों का आशय दशार्ण नदी के निकट अवस्थित "कोटि पहाड़" पर्वत-माला से रहा है, जो आकार की दृष्टि से "जोअणपिहुला" अर्थात् एक योजन विस्तार रखती है। दशार्ण नदी, भोपाल के विरमऊ पहाड़ों से निकलकर टीकमगढ़, छतरपुर जिलों की सीमा-रेखा बनाती हुई, झांसी जिले के चंदवारी गाँव के निकट बेतवा में गिर जाती है। इस नदी के दक्षिण में विन्ध्याचल की भांडेर श्रेणियाँ तथा पूर्व में पन्ना पर्वत-श्रेणियां हैं। नदी के पश्चिमी भाग में – दक्षिण से उत्तर की ओर अनेक छोटे-छोटे स्वतंत्र एकान्तिक पहाड़ है, जिनकी एक अन्तरङ्ग शृङ्खला मदनपुर से अहार क्षेत्र तक चली गई है। किसी अन्य नाम के अभाव में, इस पर्वत श्रेणी को ही पूर्वाचार्यों ने दशार्ण पर्वत कहा है, ठीक वैसे ही जैसे महाभारत-काल में "दशार्ण" के आधार पर इस क्षेत्र की एक संज्ञा हमें "दशार्णा" प्राप्त होती है। इसी दशार्ण पर्वत-श्रेणी अथवा "कोटि पहाड़" पर प्राचीन कोटि-शिला अवस्थित रही होगी।

कोटि पहाड़ से कोटिशिला के समीकरण के कतिपय अवान्तर प्रमाण हमें उपलब्ध होते हैं। आदिपुराण में चक्रवर्ती भरत की सेनाओं द्वारा तैरश्चिक, वैडूर्य और कूटाद्रि का उल्लंघन कर पारियात्र देश को प्राप्त करने का उल्लेख है। दशार्ण के पर्वतीय क्षेत्र की "परियात्र" संज्ञा हमें मध्य युग में प्राप्त होती है पद्मनन्दि का वारा-नगर इसी परियात्र देश में अवस्थित था। वारानगर को वर्तमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़ागांव से समीकृत किया गया है। परियात्र अथवा दशार्ण के इसी पर्वतीय क्षेत्र को आदिपुराणकार ने कूटाद्रि कहा है, जो आज भी कूटाद्रि अथवा कोटि पहाड़ के नाम से विख्यात है। बोधप्राभृत की टीका में आचार्य श्रुतसागर ने द्रोणीगिरि - कुंथूगिरि के निकट "कोटि-शिलागिरि" का उल्लेख किया है तथा 'तीर्थाटन-चन्द्रिका' में यह स्थान 'सिद्धाद्रिकूटक' कहा गया है। द्रोणीगिरि निःसन्देह वर्तमान द्रोणगिरि सिद्ध क्षेत्र है, जो कोटि पहाड़ अथवा कोटिशिलागिरि के निकट अवस्थित है। संस्कृत निर्वाणभक्ति के आचार्य ने 'विन्ध्ये' पद द्वारा इन तीर्थों की वन्दना की है। आचार्य मदनकीर्ति ने कहा है कि विन्ध्य पर्वत के वे इन्द्रपूजित जिन-भवन आज भी सम्यग्दृष्टि जनों को प्रत्यक्ष की भाँति प्रतिभासित होते हैं।

अंततः कोटि पहाड़ पर 'टाठीबेर' की गरिमापूर्ण उपस्थिति का रहस्योद्घाटन आवश्यक है। 'टाठी' शब्द बुन्देली में पात्र या वर्तन का पर्याय है तथा 'बेर' संज्ञा एक वृक्ष तथा उसके पात्र विशेष को सूचित करती है। लोक-व्युत्पत्ति के अनुसार 'टाठीबेर' वह स्थल है जहाँ पात्र अथवा वर्तन रूपी पात्र देने वाला वृक्ष अवस्थित है। आज इस स्थल पर एक भग्न बावड़ी है, जिसके सम्बन्ध में यह लोक-विश्वास जीवित है कि विवाहादि के समय वह अपने भक्तों को मन-वांछित बर्तन या भाजन उपलब्ध कराती है। इसीलिये स्थानीय परम्परा में उसे आज 'थाली बावड़ी' कहते हैं। कहा नहीं जा सकता कि 'बेर' वृक्ष ने कब अपनी सम्मान रक्षा के लिये इस पर्वतीय बावड़ी का बाना धारण कर लिया, किन्तु जम्बूछीवपण्णत्ती के साक्ष्य पर कल्पवृक्ष-युक्त पर्वत की धारणा से अवश्य हम अवगत होते हैं। इन कल्पवृक्षों की एक श्रेणी 'भाजनांग' कही गई है, जो याचक को मनवांछित भाजन प्रदान करती थी। 'टाठीबेर' क्या 'भाजनांग कल्प-वृक्ष' का बुन्देली अवशेष नहीं है? भाजनफलदाता वृक्ष को पौराणिक शब्दावली में 'भाजनांग कल्पवृक्ष' की ही संज्ञा दी जा सकती है। कोटिपहाड़ पर टाठीबेर की उपस्थिति का शास्त्रीय अर्थ है कोटिशिला पर कल्पवृक्ष की उपस्थिति। आचार्य जिनप्रभसूरि ने कदाचित् इसीलिये महातीर्थ कोटिशिला को शाश्वत सिद्धिक्षेत्र की गरिमा से विभूषित किया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकेशगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

* —डा० शिवप्रसाद

पूर्वमध्यकालीन श्वेताम्बर गच्छों में उपकेशगच्छ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहाँ अन्य सभी श्वेताम्बर गच्छ भगवान् महावीर से अपनी परम्परा जोड़ते हैं, वहीं उपकेशगच्छ अपना सम्बन्ध भगवान् पार्श्वनाथ से जोड़ता है। अनुश्रुति के अनुसार इस गच्छ की उत्पत्ति का स्थान राजस्थान प्रदेश में स्थित ओसिया (प्राचीन-उपकेशपुर) माना जाता है। परम्परानुसार इस गच्छ के आदिम आचार्य रत्नप्रभसूरि ने वीर सम्वत् ७० में ओसवाल जाति की स्थापना की, परन्तु किसी भी ऐतिहासिक साक्ष्य से इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर ओसवालों की स्थापना और इस गच्छ की उत्पत्ति का समय ईस्वीं सन् की आठवीं शती के पूर्व नहीं माना जा सकता।

चैत्यवासी आम्नाय में उपकेशगच्छ का विशिष्ट स्थान है। इस गच्छ में कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि और सिद्धसूरि इन तीन नामों की प्रायः पुनरावृत्ति होती रही है। उपकेशगच्छ में कई विद्वान् एवं प्रभावक आचार्य और मुनिजन हुए हैं, जिन्होंने साहित्योपासना के साथ-साथ नवीन जिनालयों के निर्माण और प्राचीन जिनालयों के जीर्णोद्धार तथा जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना द्वारा पश्चिम भारत में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय को जीवन्त बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

अन्य गच्छों की भाँति उपकेशगच्छ से भी कई अवान्तर शाखाओं का जन्म हुआ, जैसे वि. सं १२६६/ई० सन् १२१० में द्विवंदनीक शाखा, वि० सं० १३०८/ई० सन् १२५२ में खरतपाशाखा तथा वि० सं० १४९८/ई० सन् १४४१ में खादिरीशाखा अस्तित्व में आयी।

उपकेशगच्छ के इतिहास के अध्ययन के लिये साहित्यिक साक्ष्यों के अन्तर्गत इस गच्छ के मुनिजनों की कृतियों की प्रशस्तियाँ, मुनिजनों

* सहशोधाधिकारी पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी, ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के अध्ययनार्थ अथवा प्रेरणा से प्रतिलिपि करायी गयी प्राचीन ग्रन्थों की दाता प्रशस्तियाँ, दो प्रबन्ध (उपकेशगच्छप्रबन्ध और नाभिनन्दन-जिनोद्धारप्रबन्ध—रचनाकाल—वि० सं० १३९३/ई० सन् १३३६) और उपकेशगच्छ की कुछ पट्टावलियाँ उपलब्ध हैं। इस गच्छ के मुनिजनों द्वारा बड़ी संख्या में प्रतिष्ठापित जिन-प्रतिमायें मिली हैं, जिनमें से अधिकांशतः लेखयुक्त हैं। साम्प्रत लेख में उक्त साक्ष्यों के आधार पर उपकेशगच्छ के इतिहास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा हेतु सर्वप्रथम साहित्यिक और तत्पश्चात् अभिलेखीय साक्ष्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनका अलग-अलग विवरण इस प्रकार है—

१. **नवपयपयरण (नवपदप्रकरण)**–महाराष्ट्री प्राकृत भाषा में रचित १३७ पद्यों की यह रचना उपकेशगच्छीय कक्कसूरि के विद्वान् शिष्य जिनचन्द्रगणि पूर्वनाम कुलचन्द्र (देवगुप्तसूरि) की अनुपम कृति है। रचनाकार ने अपनी इस कृति पर वि० सं० १०७३/ई० सन् १०१६ में वृत्ति की रचना की, जिसका नाम **श्रावकानन्दकारिणी** है।[1]

---

१. नवपदटीका प्रोक्ता श्रावकानन्दकारिणी नाम्ना।
श्रीदेवगुप्तसूरिभिर्भावयितव्या प्रयत्नेन ॥
साधूपयोगाय यया प्रयासः कृतः स्वपुण्याय च एष धर्मः।
अतोत्र मात्सर्यमभिप्रपद्य मा कोपि कार्षीन्मय पुण्यविघ्नं ॥
त्रिसप्तत्यधिकसहस्रे मासे कार्तिकसंज्ञिते।
श्रीपार्श्वनाथचैत्ये तु दुर्गमीये च पत्तने ॥
श्रावकानन्दटीकेयं नवपदस्य प्रकीर्तिता।
जिनचन्द्रगणिनाम्ना तु गच्छे ऊकेशसंज्ञिते ॥
कक्काचार्यस्य शिष्येण कुलचन्द्रसंज्ञितेन।
तेनैषा रचिता टीका निर्जरार्थं तु कर्मणां ॥
शिष्य-प्रशिष्यवंशस्योपकाराय जायते।
टीकेयं नवपदस्यास्तु यथार्थेयं प्रवर्त्तिता ॥

दलाल, सी० डी०—ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द जैन ग्रन्थ भण्डार्स ऐट पाटन (बड़ोदरा–१९३७ ई०) पृष्ठ २-३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ककसूरि
|
कुलचन्द्र/जिनचंद्रगणि
अपरनाम देवगुप्तसूरी [नवपदप्रकरणसटीक]
रचनाकाल
वि० सं० १०७३ / ई० सन् १०१६

वाचक उमास्वाति के **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** की ३१ उपोद्घात्-कारिका की टीका करने वाले देवगुप्तसूरि भी शायद यही देवगुप्त-सूरि हों !

२. **नवपदप्रकरणबृहद्वृत्ति**[1]—उपकेशगच्छीय धनदेव अपरनाम यशोदेवउपाध्याय ने वि० सं० ११६५ में अपने पूर्वज जिनचन्द्रगणि अपरनाम देवगुप्तसूरि की कृति पर बृहद्वृत्ति की रचना की। इसकी प्रशस्ति[1] में उन्होंने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

---

१. उत्सूत्रमत्र रचितं यदनुपयोगान्मया कुबोधाय ।
तच्छोधयन्तु सुधियः सदाशया मयि विधाय कृपाम् ॥१॥
विलसद्गुणमणिनिकरः, पाठीनविराजितो नदीनश्च ।
जलनिधिरिवास्ति गच्छः श्रीमानूकेशपुरनिसृतः ॥२॥
तत्रासीदतिशायिबुद्धिविभवश्चारित्रिणामग्रणीः,
सिद्धान्तार्णवपारगः स भगवान् श्रीदेवगुप्ताभिधः ।
सूरिर्भूरिगुणान्वितो जिनमतादुद्धृत्य येन स्वयं,
श्रोतृणां हितकाम्यया विरचिता भव्याः प्रबन्धा नवाः ॥३॥
तेनैव स्वपदप्रतिष्ठिततनुः श्रीकक्कसूरिप्रभुर्नानाशास्त्र-
प्रबोधबन्धुरमतिर्जज्ञे स विद्वानिह ।
मीमांसां जिनचैत्यवन्दनविधिं पञ्चप्रमाणीं तथा,
बुध्वा यस्य कृतिं भवन्ति कृतिनः सद्बोधशुद्धाशयाः ॥४॥
तत्पादपद्मद्वयचञ्चरीकः, शिष्यस्तदीयोऽजनि सिद्धसूरिः ।
तस्माद्बभूवोज्ज्वलशीलशाली, त्रिगुप्तिगुप्तः खलु देवगुप्तः ॥५॥
अपिच-यं वीक्ष्य निःसीमगुणैरुपेतं, श्रीसिद्धसूरिः स्वपदे विधातुम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

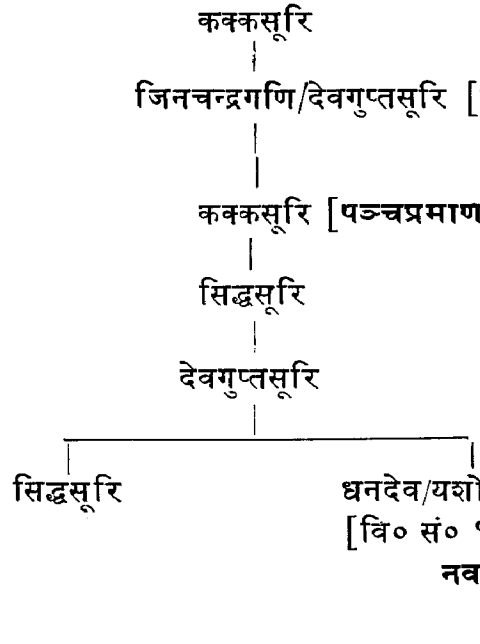

यशोदेवउपाध्याय ने वि० सं० ११७८ ई०/सन् ११२१ में प्राकृत भाषा में (६४०० गाथाओं) चन्द्रप्रभचरित की भी रचना की।

३. **क्षेत्रसमासवृत्ति** – ३००० श्लोक परिमाण यह कृति उपकेशगच्छीय सिद्धसूरि द्वारा वि० सं० ११९२ में रची गयी है। इसकी

श्रीमत्युपाध्यायपदे निवेश्य, प्रख्यापयामास जनस्य मध्ये ॥६॥
तद्वचनेनारब्धा तस्यान्तेवासिना विवृतिरेषा।
तत्रैवाचार्यपदं विशदं पालयति सन्नीत्या ॥७॥
लोकान्तरिते तस्मिंस्तस्य विनेयेन निजगुरुभ्रात्रा।
श्रीसिद्धसूरिनाम्ना, भणितेन समर्थिता चेति ॥८॥
उपाध्यायो यशोदेवो, धनदेवाद्यनामकः।
जडोऽपि धाष्टर्यतञ्चक्रे, वृत्तिमेनां सविस्तराम् ॥९॥
एकादशशतसंख्येष्वब्देष्वधिकेषु पञ्चषष्टयेयम्।
अणहिल्लपाटकपुरे सिद्धोकेशीयवीरजिनभवने ॥१०॥
नवपदप्रकरणबृहद्वृत्ति की प्रशस्ति, प्रकाशक—देवचन्दलालभाई जैन पुस्तकोद्धार; ई० सन् १९२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्ति[1] में वृत्तिकार की गुरु-परम्परा का जो उल्लेख मिलता है, वह इस प्रकार है—

कक्कसूरि
|
सिद्धसूरि
|
देवगुप्तसूरि
|
सिद्धसूरि [क्षेत्रसमासवृत्ति के रचनाकार]

---

१. प्रसिद्ध ऊकेशपुरीयगच्छे श्रीकर्कसूरिर्विदुषां वरिष्ठः ।
साहित्यतर्कागमपारदृश्वा बभूव सल्लक्षणलक्षिताङ्गः ॥१॥
तदीयशिष्योऽजनि सिद्धसूरिः सद्देशनाबोधितभव्यलोकः ।
निर्लोभतालङ्कृतचित्तवृत्तिः सज्ज्ञानचारित्रदयान्वितश्च ॥२॥
श्रीदेवगुप्तसूरिस्तच्छिष्योऽभूद्विशुद्धचारित्रः ।
वादिगजकुम्भभेदनपटुतरनखरायुधसमानः ॥३॥
तच्छिष्यसिद्धसूरिः क्षेत्रसमासस्य वृत्तिमयमकरोत् ।
गुरुभ्रातृयशोदेवोपाध्यायज्ञातशास्त्रार्थः ॥४॥
उत्सूत्रमत्र किञ्चिन्मतिमान्द्याज्ज्ञानतो मयाऽलेखि ।
निर्व्याजं विद्वद्भिस्तच्छोध्यं मयि विधाय दयाम् ॥५॥
खैः षण्णवत्याङ्कैश्रुतुःषष्टचा द्वात्रिंशताक्षरैः ।
श्लोकमानेन चैवं त्रिसहस्रा ग्रन्थसङ्ख्याऽत्र ॥६॥
अब्दशतेष्वेकादशसु द्विनवत्याधिकेषु ११९२ विक्रमतः ।
चैत्रस्य शुक्लपक्षे समर्थिता शुक्लत्रयोदश्याम् ॥७॥
यावज्जैनेश्वरो धर्मः समेरुर्वर्त्तते भुवि ।
भव्यैः पाप्यमानोऽयं तावन्नन्दतु पुस्तकः ॥८॥

मुनि पुण्यविजय—न्यू कैटलाग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स : जैसलमेर कलेक्शन (अहमदाबाद–१९७२ ई०) पृष्ठ ६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययनसूत्र सुखबोधावृत्ति[1]—इस ग्रन्थ की एक प्रति शान्तिनाथ जैन ग्रंथ भण्डार, खंभात में संरक्षित है। इसे उपकेशगच्छीय ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि के शिष्य सिद्धसूरि के उपदेश से वि० सं० १३५२/ई० सन् १२९५ में श्रावक गोसल के पुत्र सङ्घपति आशाधर ने लिपिबद्ध कराया :—

देवगुप्तसूरि
|
सिद्धसूरि [वि० सं० १३५२/ई० सन् १२९५ में इनके उपदेश से उत्तराध्ययनसूत्र-सुखबोधावृत्ति की प्रतिलिपि की गयी]

नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध अपरनाम शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारप्रबन्ध शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारक समरसिंह के गुरु उपकेशगच्छीय सिद्धसूरि के पट्टधर कक्कसूरि ने वि० सं० १३९३ में कञ्जरोटपुर में उक्त कृति की रचना की। इसमें समरसिंह द्वारा शत्रुञ्जय पर कराये गये जीर्णोद्धार एवं उपकेशगच्छ के सम्बन्ध में विवरण प्राप्त होता है। श्री लालचन्द भगवानदास गांधी ने अपने विद्वत्तापूर्ण लेख[2] में कक्कसूरि की गुरु

१. सिद्धसूरिगुरोराज्ञां बिभ्राणः शिरसा भृशम्।
करेष्वग्नीन्दु १३५२ वर्षेऽत्र व्यलीलिखदवाचयत् ॥२८॥
श्रीदेवगुप्तसूरीणां शिष्यः समुदि संसदि।
पासमूर्तिस्तदादेशात् किमप्यर्थमभाषत् ॥३१॥
.....जस्येह पुष्पदन्तौ स्थिराविमौ।
गुरुभिर्वाच्यमानोऽयं तावन्नन्दतु पुस्तकः ॥३२॥
संवत् १३५२ वर्षे वर्षाकाले श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्यसंताने श्रीसिद्धसूरिप्रतिपत्तौ सा० देसलसन्ताने सा० गोसलात्मजसंघपति—आशाधरेण श्रीउत्तराध्ययनवृत्तिः ससूत्रा कारिता ॥
मुनि पुण्यविजय—कैटलाग ऑफ पामलीफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि शान्तिनाथ जैन भण्डार, कैम्बे (बड़ौदा १९६२-६६) पृ० १२०-१२३

२. गान्धी, लालचन्द भगवानदास—ऐतिहासिकजैनलेखो [बड़ोदरा, १९६३ ई०] पृष्ठ ५११-५९१
देसाई, मोहनलाल दलीचन्द—जैनसाहित्यनो संक्षिप्तइतिहास, पृष्ठ ४२६-२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

रत्नप्रभसूरि
|
यक्षदेवसूरि
|
|
|
कक्कसूरि
|
सिद्धसूरि
|
देवगुप्तसूरि
|
सिद्धसूरि [समरसिंह के गुरु]
|
कक्कसूरि [वि० सं० १३९३/ई० सन् १३३६ में नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध के कर्ता]

उपकेशगच्छ की पट्टावलियाँ—जहाँ अन्य गच्छों की मात्र दो या तीन पट्टावलियाँ ही मिलती हैं, वहाँ उपकेशगच्छ की कई पट्टावलियों का उल्लेख मिलता है, किन्तु दुर्भाग्यवश अद्यावधि मात्र तीन पट्टावलियां ही प्रकाशित होने से अध्ययनार्थ उपलब्ध हो पाती हैं, शेष पट्टावलियां या तो नष्ट हो गयीं अथवा किन्हीं प्राचीन हस्तलिखित भण्डारों में पड़ी होंगी।

प्रकाशित पट्टावलियों का विवरण इस प्रकार है—

१. **उपकेशगच्छप्रबन्ध**[1]—रचनाकार—कक्कसूरि, रचनाकाल वि० सं० १३९३

१. देसाई, मोहनलाल दलीचन्द—जैनगुर्जरकविओ (प्रथम संस्करण), भाग ३, खण्ड २, पृष्ठ २२५४–२२७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **उपकेशगच्छपट्टावली**—[१]रचनाकार-अज्ञात, रचनाकाल—वि० सं० की १५वीं शती का अन्त

३. **उपकेशगच्छपट्टावली**[२]—रचनाकार-अज्ञात, रचनाकाल—वि० सम्वत् की २०वीं शती

कक्कसूरि के सं० १३९३/ई० १३३६ में लिखे गये **उपकेशगच्छ-प्रबन्ध** एवं नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध के आधार पर श्री मोहनलाल-दलीचंद देसाई ने उपकेशगच्छ की पट्टावली का पुनर्गठन किया है। इस पट्टावली में कक्कसूरि और उनके गुरु सिद्धसूरि के सम्बन्ध में दिये गये समसामयिक विवरणों की ऐतिहासिकता निर्विवाद है। इसी प्रकार इस पट्टावली के कुछ अन्य विवरणों जैसे देवगुप्तसूरि द्वारा नवपदप्रकरणवृत्ति, उनकी पाश्चात्कालीन परम्परा में हुए यशोदेव-उपाध्याय द्वारा नवपदप्रकरणबृहद्वृत्ति के लेखन की बात उक्त-रचनाओं की प्रशस्तियों से समर्थित होती है। चौलुक्यनरेश कुमार-पाल के समय कक्कसूरि द्वारा पाटण में क्रियाहीन साधुओं को गच्छ से बाहर करने की बात, जो इस पट्टावली में उद्धृत की गयी है, सत्य प्रतीत होती है। यद्यपि इस घटना का किसी अन्य समसामयिक साक्ष्य से समर्थन नहीं होता। इस पट्टावली में उल्लिखित अन्य बातें-यथा-पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा से उपकेशगच्छ की उत्पत्ति, वीरनिर्वाण सम्वत् ८४ में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशपुर और कोरंटपुर में एक साथ जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा आदि का किसी भी पुराने ऐतिहासिक साक्ष्य से समर्थन नहीं होता, अतः ये बातें ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वहीन हैं।

---

१. मुनि जिनविजय—संपा० विविधगच्छीयपट्टावलीसंग्रह (बम्बई, १९५१ ई०) पृष्ठ ७-९

२. देसाई, पूर्वोक्त, पृष्ठ २२७७-२२८५;
मुनि दर्शनविजय—संपा० पट्टावलीसमुच्चय भाग १ (वीरमगाम १९३३ ई०) पृष्ठ १७७-१९४
मुनि कल्याणविजय—संपा० पट्टावलीपरागसंग्रह (जालौर सं० २०२३) पृष्ठ २३४-२३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकेशगच्छ की द्वितीय पट्टावली में भी पार्श्वनाथ की परम्परा से उपकेशगच्छ की उत्पत्ति, वीर सम्वत् ८४ में आचार्यरत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशपुर और कोरंटपुर में एक ही तिथि में जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठापना का परम्परागत विवरण प्राप्त होता है। इस पट्टावली में वि० सं० १२६६ में उपकेशगच्छ से द्विवंदनीकगच्छ का प्रादुर्भाव, इसके पश्चात् वि० सं० १३०८ में खरातपा शाखा का उद्भव एवं वि० सं० १४९८ में देवगुप्तसूरि के शिष्य से खादिरी शाखा के उदय की बात कही गयी है। द्विवंदनीकगच्छ के उद्भव की बात तो अन्य पट्टावलियों से भी ज्ञात होती है किन्तु खरातपा शाखा और खादिरी शाखा के उद्भव के सम्बन्ध में अन्य किसी पट्टावली से कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। चूंकि अभिलेखीय साक्ष्यों से उक्त शाखाओं का अस्तित्व सिद्ध है, अतः इस पट्टावली का उक्त विवरण अत्यन्त-महत्त्वपूर्ण है।

उपकेशगच्छ की तृतीय पट्टावली में भगवान् पार्श्वनाथ के पट्टधर शुभदत्त से लेकर सिद्धसूरि वि० सं० १९३५ तक लगभग २५०० वर्षों की अवधि में हुए ८४ आचार्यों के नाम, उनके काल एवं उनके समय की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संक्षिप्त विवरण है। अनुश्रुतिपरक विवरणों से परिपूर्ण एवं अर्वाचीन होने के कारण उपकेशगच्छ के प्राचीन इतिहास के अध्ययन में उक्त पट्टावली प्रामाणिक नहीं कही जा सकती है।

अभिलेखीयसाक्ष्य—उपकेशगच्छ से सम्बद्ध बड़ी संख्या में अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। ये लेख वि० सं० १०११ से वि० सं० १९१८ तक के हैं। इन लेखों में विक्रम की ग्यारहवीं शती के प्रारम्भ से लेकर विक्रम की १३वीं शती के अन्त तक केवल १८ लेख ही उपलब्ध हुए हैं, इनका विवरण इस प्रकार है—

उपकेशगच्छ के प्रारम्भिक प्रतिमा लेखों का विवरण

संवत्	तिथि/मिति	आचार्य नाम	
१०११	चैत्र सुदि ६	कक्काचार्य	[१ प्रतिमालेख]
१०११	—	देवसूरि	[,,]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०७८	फाल्गुन वदि ४	कक्कसूरि	[,,]
११००	मार्गशिर सुदि ६	—	[,,]
११२५	वैशाख सुदि १०	—	[,,]
११७२	फाल्गुन सुदि ७ सोमवार	ककुदाचार्य	[,,]
१२०२	आषाढ़ सुदि ६ सोमवार	,,	[६ प्रतिमालेख]
१२०३	वैशाख सुदि १२	सिद्धाचार्य	[१ प्रतिमालेख]
१२०६	कार्तिक वदि ६	ककुदाचार्य	[,,]
१२१२	ज्येष्ठ वदि ८ मङ्गलवार	,,	[,,]
१२५९	कार्तिकसुदि १२	कक्कसूरि	[,,]
१२६१	ज्येष्ठ सुदि १२	सिद्धसूरि	[,,]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	संवत्	तिथि/मिति	प्रतिष्ठापक आचार्य का नाम	प्रतिमा लेख/ स्तम्भ लेख	प्रतिष्ठा स्थान	संदर्भ ग्रन्थ
१	१०११	चैत्र सुदि ६	कक्काचार्य के शिष्य देवदत्त	शान्तिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, ओसिया	नाहर, पूरनचन्द संपा० जैनलेखसंग्रह भाग १, लेखांक १३४
२	१०११	तिथि विहीन	देवसूरि	शांतिनाथ की धातु की पंचतीर्थीप्रतिमा का लेख		लोढ़ा, दौलतसिंह संपा० श्रीप्रतिमा-लेखसंग्रह लेखांक ३२१
३	१०७८	फाल्गुन वदि ४	कक्कसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख		नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ७९२
४	११००	मार्गशिर सुदि ६	शालिभद्र…?	—		वही, भाग १ लेखांक ८३०
५	११२५	बैशाख सुदि १०	—	पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख		वही, भाग १ लेखांक ५३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६	११७२	फाल्गुन सुदि ७ सोमवार	ककुदाचार्य		पार्श्वनाथ जिनालय माणेक चौक, खंभात	मुनि बुद्धिसागर संपा० जैनधातु-प्रतिमालेखसंग्रह भाग २ लेखांक ९१७
७	१२०२	आषाढ़ सुदि ६ सोमवार	ककुदाचार्य	अरनाथ की प्रतिमा का लेख	विमलवसही, दिलवाड़ा, आबू	मुनि कल्याणविजय संपा० प्रबन्धपारि-जात, लेखांक १४
८	१२०२	,,	,,	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक २ एवं मुनि जिनविजय संपा० प्राचीन जैन-लेख संग्रह, भाग २, लेखांक १३५
९	१२०२	,,	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, भाग २ लेखांक १३९
१०	१२०२	,,	,,	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, भाग २ लेखांक १४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११	१२०२	आषाढ़ सुदि ६ सोमवार	ककुदाचार्य		विमलवसही, आबू	मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक १४७
१२	१२०२	,,	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, भाग २, लेखांक १५०
१३	१२०३	वैशाख सुदि १२	सिद्धाचार्य…?	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, नाकोड़ा तीर्थ राजस्थान	विनयसागर– लेखक, नाकोड़ा पार्श्वनाथतीर्थ, लेखांक ४
१४	१२०६	कार्तिक वदि ६	ककुदाचार्य	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	नेमिनाथजिनालय कुंभारिया	मुनि विशालविजय लेखक, कुभांरिया तीर्थ, लेखांक ९
१५	१२१२	ज्येष्ठ वदि ८ मंगलवार	,,	देहरी का लेख	देहरी नं० ५१ विमलवसही, आबू	मुनि कल्याणविजय पूर्वोक्त, लेखाक १३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६	१(२?)२५	वैशाख सुदि १०	मुनिचन्द्रसूरि	पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ मुख्य बावन-जिनालय, मडार	मुनि बुद्धिसागर-पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ४७४
१७	१२५९	कार्तिक सुदि १२	कक्कसूरि	चौबीसमाता के पट्ट पर उत्कीर्ण लेख	वीर जिनालय, ओसिया	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ७९१
१८	१२६१	ज्येष्ठ सुदि १२	सिद्धसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	जैन मंदिर, ईडर	मुनि बुद्धिसागर-पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक १४०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवपदप्रकरण के कर्ता देवगुप्तसूरि के शिष्य कक्कसूरि और वि० सं० १०७८/ई० सन् १०२१ के प्रतिमा लेख में उल्लिखित कक्कसूरि को समसामयिक होने से एक ही आचार्य मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती है, इसी प्रकार देवगुप्तसूरि 'द्वितीय' के शिष्य लघुक्षेत्रसमास (रचनाकाल वि० सं० ११९२/ई० सन् ११३५) के रचनाकार सिद्धसूरि और वि० सं० १२०३/ई० सन् ११४६ के प्रतिमा-लेख में उल्लिखित सिद्धसूरि को एक दूसरे से अभिन्न माना जा सकता है, क्योंकि इस समय तक उपकेशगच्छ में कोई विभाजन दृष्टि-गोचर नहीं होता है।

पट्टावली न० १ के अनुसार सिद्धसूरि के पट्टधर कक्कसूरि ने चौलुक्यनरेश कुमारपाल (वि० सं० ११९९-१२३०) के समय अपने गच्छ के क्रियाहीन मुनिजनों को गच्छ से निष्कासित कर दिया था। उक्त कक्कसूरि को वि० सं० ११७२-१२१२ के प्रतिमालेखों में उल्लिखित ककुदाचार्य से अभिन्न माना जा सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कक्कसूरि ने अपने साथ के जिन मुनिजनों को गच्छ से निष्कासित कर दिया था, उन्हीं से गच्छ-भेद प्रारम्भ हुआ। सम्भवतः इन्हीं मुनिजनों ने स्वयं को सिद्धाचार्य-सन्तानीय कहना प्रारम्भ कर दिया और इसके परिणामस्वरूप कक्कसूरि के शिष्य ककुदाचार्यसंतानीय कहलाये।

१३वीं शती तक के साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर उपकेशगच्छीय मुनिजनों की गुरु-शिष्य परम्परा का क्रम इस प्रकार निर्मित होता है—

तालिका—१.

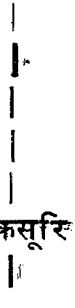

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनचन्द्रगणि/कुलचंद्रगणि
अपरनाम
देवगुप्तसूरि [वि सं० १०७३/ई० सन् १०१६ में नवपदप्रकरणसटीक के रचनाकार]
कक्कसूरि [जिनचैत्यवन्दनविधि एवं पञ्चप्रमाण के कर्त्ता] [वि० सं० १०७८ प्रतिमालेख]
सिद्धसूरि
देवगुप्तसूरि [द्वितीय]

सिद्धसूरि	यशोदेव उपा० पूर्वनाम धनदेव
वि० सं० ११९२/ई० सन् ११३५ में क्षेत्रसमासवृत्ति [वि० सं० १२०३ प्रतिमा लेख]	वि० सं० ११६५/ई० सन् ११०८] नवपदप्रकरणबृहद्वृत्ति वि० सं० ११७८/ई० सन् ११२१ में चंद्रप्रभचरित

कक्कसूरि [चौलुक्यनरेश कुमारपाल वि० सं० ११९९-१२३०] के समकालीन
[वि० सं० ११७२-१२१२ प्रतिमालेख]

विक्रम की चौदहवीं शती से उपकेशगच्छ से सम्बद्ध प्रतिमालेखों की संख्या बढ़ने लगती है। यह उल्लेखनीय है कि विक्रम की १३वीं शती तक के लेखों में उपकेशगच्छ और प्रतिमाप्रतिष्ठापक आचार्य का उल्लेख मिलता है, जबकि १४वीं शती एवं बाद के लेखों में प्रतिमा प्रतिष्ठापक आचार्य के नाम के पूर्व ककुदाचार्यसन्तानीय और सिद्धाचार्यसन्तानीय ऐसा उल्लेख मिलता है, इससे यह प्रतीत होता है कि विक्रम की १३वीं शती के अन्त में अथवा १४वीं शती के प्रथम दशक में उपकेशगच्छ दो शाखाओं—ककुदाचार्यसन्तानीय और सिद्धाचार्यसन्तानीय में विभाजित हो चुका था।

उपकेशगच्छीय ककुदाचार्यसन्तानीय मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों का विवरण इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	संवत्	तिथि/मिति	प्रतिष्ठापक आचार्य का नाम	प्रतिमा लेख/स्तम्भ लेख	प्रतिष्ठास्थान	सन्दर्भग्रन्थ
१	२	३	४	५	६	७
१.	१३२०	ज्येष्ठ सुदि १५ शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा. अगरचन्द संपादक, बीकानेर जैनलेखसंग्रह लेखांक ४४५
२.	१३४५	—	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त— भाग ३, लेखांक २२३६
३.	१३४७	—	,,	स्तम्भ लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक २०४
४.	१३४९	फाल्गुन सुदि ८ रविवार	,,	नेमिनाथ की पाषाण की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, अजारी	मुनि जयन्तविजय संपा० अर्बुदाचल-प्रदक्षिणाजैनलेख संदोह, लेखांक ४३१
५.	१३५४	माघ वदि ४ शुक्रवार	,,	अरनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त— लेखांक २१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
६.	१३५६	ज्येष्ठ वदि ८	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	स्तम्भन पार्श्वनाथ जिनालय, खारवाडो, खंभात	मुनि बुद्धिसागर– पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १०४४
७.	१३६ (?)	तिथिविहीन	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि के शिष्य सिद्धसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, राजलदेसर	नाहटा, पूर्वोक्त– लेखांक २३४८
८.	१३७३	,,	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय,पीपलाशेरी, बड़ोदरा	मुनि बुद्धिसागर पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १६६
९.	१३७७	ज्येष्ठ वदि ११ गुरुवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	शांतिनाथ की सपरिकर प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा-पूर्वोक्त लेखांक १३५२
१०.	१३७८	ज्येष्ठ वदि ९ सोमवार	,,	—	देवकुलिका नं० १० विमलवसही, आबू	मुनिजिनविजय— पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक २०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. १३७८	ज्येष्ठ वदि ९ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	देहरी नं० ४२ विमलवसही, आबू	मुनिकल्याणविजय पूर्वोक्त, लेखांक ११३
१२. १३७८	ज्येष्ठ सुदि ९ मंगलवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिंहसूरि (सिद्धसूरि…?) के शिष्य कक्कसूरि		विमलवसही, आबू	वही, लेखांक २२१
१३. १३८०	ज्येष्ठ सुदि १४	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथजिनालय, चुरू-राजस्थान	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १३५८
१४. १३८०	माघ सुदि ६ सोमवार	,,	चौबीसी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि-पार्श्वनाथजिनालय, खंभात	मुनि बुद्धिसागर-पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ५३१
१५. १३८०	माघ सुदि ६ मंगलवार	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	बावन जिनालय, पेथापुर	वही, भाग १, लेखांक ७११
१६. १३८२	वैशाख सुदि २ शनिवार	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि-जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१७.	१३८४	माघ सुदि ५	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ३००
१८.	१३८५	फाल्गुन सुदी ८	,,	महावीरस्वामी की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक १२७५
१९.	१३८५	,,	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक ३०९
२०.	१३८६	वैशाख सुदी १२	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ-जिनालय, गाररडु	विनयसागर-संपा० प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, लेखांक १२६
२१.	१३८६	ज्येष्ठ वदि ५ सोमवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त लेखांक-२२५३
२२.	१३८७	माघ सुदि १० शनिवार	,,	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय, जानीशेरी, बड़ोदरा	मुनिबुद्धिसागर पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. १३८८	माघ सुदि ६ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	बावन जिनालय, पेथापुर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ७०६
२४. १३९०	ज्येष्ठ वदि ११	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथजिनालय, (नाहटों में) बीकानेर	नाहटा,पूर्वोक्त लेखांक १४७७
२५. १३९१	तिथि विहीन	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २२६१
२६. १३९३	तिथिविहीन	,,	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि-जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ३५३
२७. १४०१	ज्येष्ठ सुदि १० बुधवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि के पट्टधर देवगुप्तसूरि	धातु की परिकर वाली एकतीर्थी प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, जीरावला	मुनिजयन्तविजय अर्बुदाचलप्रद-क्षिणाजैनलेख-संदोह (आबू भाग-५) लेखांक ११७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
२८.	१४०५	वैशाख सुदि ३	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, जयपुर	नाहर-पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ४००
२९.	१४०५	वैशाख सुदी ३	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ जिनालय भिंडी बाज़ार, बम्बई	मुनि कान्तिसागर संपा० जैनधातु-प्रतिमालेख, लेखांक ३६
३०.	१४०८	वैशाखसुदि···	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक २७५८
३१.	१४२१	ज्येष्ठ सुदि १० बुधवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि के पट्टधर देवगुप्तसूरि	देवकुलिका का लेख	जीरावली तीर्थ चैत्य देवकुलिका	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखांक ३०३[अ]
३२.	१४२२	वैशाख सुदि ११ बुधवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि			बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक ५४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. १४२५	आषाढ़ सुदि ३ रविवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	आदिनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख	घर देरासर भारोलग्राम, आबू	मुनिजयन्तविजय आबू, भाग ५, लेखांक ५९
३४. १४२६	माघ वदि ७	ककुदाचार्यसंतानीय देवप्रभसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जगवल्लभ-पार्श्वनाथ देरासर, नीशापोल अहमदाबाद	बुद्धिसागर-पूर्वोक्त भाग १, लेखांक १२०४
३५. १४२७	ज्येष्ठ सुदि १५ शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १३२८
३६. १४२७	,,	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय,बीकानेर	वही, लेखांक ४८४
३७. १४३२	फाल्गुन सुदि २	,,	शांतिनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक ५०१
३८. १४३२	फाल्गुन सुदि २ शुक्रवार	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ-जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर-पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ६३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
३९.	१४४६	वैशाख वदि ३ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	पोरवालों का मंदिर, पूना	विजयधर्मसूरि संपा० प्राचीनलेख-संग्रह, लेखांक ९०
३९.अ	१४५२	वैसाख सुदि ३ बुधवार	,,	कक्कसूरि की प्रतिमा का लेख	पंचासरा पार्श्वनाथ जिना०, पाटन	जिनविजय, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक ५१६
४०.	१४५७	वैशाख सुदि ३ शनिवार	,,	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	वासुपूज्यस्वामी का मंदिर, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १३९२
४१.	१४५७	वैशाख सुदि ३ शनिवार	,, ,,	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक ५७७
४२.	१४५९	ज्येष्ठ वदि १२ शनिवार	,,	चन्द्रप्रभस्वामी की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक ५९१
४३.	१४५९	..	..	अजितनाथ की	,,	वही, लेखांक ५९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४.	१४६१	ज्येष्ठ सुदि १० शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखांक ६००
४५.	१४६१	ज्येष्ठसुदि १०	,,	,,	,,	मुनिकान्तिसागर पूर्वोक्त, लेखांक ६४
४६.	१४६२	वैशाख सुदि १० रविवार	,,	संभवनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, चेलापुरी दिल्ली	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ४९७
४७.	१४६३	तिथिविहीन	,,	शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, (नाहटों में) बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १८३३
४८.	१४६५	माघ सुदि ३ शनिवार	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक ६२२
४९.	१४६८	वैशाख वदि ३	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक ६३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
५०.	१४६८	वैशाख सुदि ३ रविवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	आदिनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ५६०
५१.	१४७०	ज्येष्ठ सुदि १३ शुक्रवार	,,	आदिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	मनमोहन, पार्श्वनाथ जिनालय, वोरवाड़, राधनपुर	मुनिविशालविजय संपा० राधनपुर प्रतिमालेखसंग्रह- लेखांक ९५
५२.	१४७०	माघ सुदि २ गुरुवार	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, मडिया, सिरोही	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक २०९२
५३.	१४७०	माघ सुदि २ गुरुवार	,,	,,	जैन मंदिर, कंकूबाई की धर्मशाला, पालिताना	मुनिकांतिसागर, शत्रुञ्जयवैभव लेखांक ६०
५४.	१४७७	मार्गशीर्ष वदि ४ रविवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	सुमतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २७४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५.	१४७८	पौष वदि १ गुरुवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	आदिनाथ की चौबीसीप्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, अलाय	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक २२०
५६.	१४८०	ज्येष्ठ वदि ५	,,	नमिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	नमिनाथ जिनालय, कासिमबाजार	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ७७
५७.	१४८१	वैशाख वदि ११	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	श्रेयांसनाथ जिनालय, हिंडोन	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक २२९
५८.	१४८२	माघ वदि ५	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ७१३
५९.	१४८२	तिथि विहीन	,,	,,	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १०७०
६०.	१४८३	ज्येष्ठ सुदि ११ शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय यक्षदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त लेखांक १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
६१.	१४८५	वैशाख सुदि ३ बुधवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २३९१ एवं नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २७७२
६२.	१४८५	ज्येष्ठ वदि ९	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	खरतरगच्छ का उपाश्रय, किशनगढ़	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक २५४
६३.	१४८५	आषाढ़ सुदि ३ रविवार	,,	आदिनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	सीमंधरस्वामी का मंदिर अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ११७५
६४.	१४८६	मार्गशीर्ष वदि ५	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १२०५
६५.	१४८७	मार्गशीर्ष वदि १० शुक्रवार	,,	संभवनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, (नाहटों में) बीकानेर	वही, लेखांक १४७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	शनिवार	सिद्धसूरि	की प्रतिमा का लेख	जिनालय, अजमेर	भाग १, लेखांक ५५०
६७. १४८८	पौष सुदि १२ शनिवार	,,	,,	,,	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक २७२
६८. १४८९	वैशाख वदि १० गुरुवार	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ शेखनो पाडो, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक १०३०
६९. १४९१	माघ सुदि ५ बुधवार	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ देरासर, देवसागर, सुजानगढ़, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २३७७
७०. १४९३	वैशाख सुदि ३	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ जिनालय, जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ११८२ एवं विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक २९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
७१.	१४९३	ज्येष्ठ सुदि ३ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	आदिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, कनासानो पाडो, पाटण	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ३५१
७२.	१४९३	फाल्गुन वदि १	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, आमेर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक २९९
७३.	१४९५	ज्येष्ठ सुदि १३	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालय, अजमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ५३१
७४.	१४९५	,,	,,	,,	चिन्तामणि जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ७८२
७५.	१४९५	मार्गशीर्ष वदि ४ गुरुवार	ककुदाचार्यसंतानीय सर्वदेवसूरि	शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, अयोध्या	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १६४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६.	१४९७	ज्येष्ठ सुदि २	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	विमलनाथ जिनालय, सवाई माधोपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त– लेखांक ३१९
७७.	१४९७	ज्येष्ठ सुदि ६	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय साथां	वही, लेखाङ्क ३२०
७८.	१४९८	वैशाख सुदि ५	,,	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	पञ्चायती मंदिर, जयपुर	वही, लेखाङ्क ३२७
७९.	१४९८	फाल्गुन वदि १०	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	बालावसही, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव लेखाङ्क ८२
८०	१४९९	फाल्गुन वदि २ गुरुवार	,,	,,	चन्द्रप्रभ जिनालय,	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क २१९
८१.	१४९९	फाल्गुन वदि २	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, चेलापुरी, दिल्ली	वही, भाग १, लेखाङ्क ४७१
८२.	१४९९	,,	,,	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	मनमोहनपार्श्व-नाथ जिनालय, चौकसीपोल, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ८२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
८३.	१५००	मार्गशीर्ष वदि २	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखाङ्क १३३०
८४	१५०१	ज्येष्ठ वदि १२ सोमवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वही, लेखाङ्क ८४६
८५.	१५०१	ज्येष्ठ वदि १२ सोमवार	,,	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखाङ्क ८४५
८६.	१५०१	माघ वदि ६	,,	शान्तिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	गुरु मन्दिर, कोचरों की बगीची, बीकानेर	वही, लेखाङ्क १९९१
८७.	१५०१	माघ वदि ६ बुधवार	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ, जिनालय, बालोतरा	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ७३०
८८.	१५०१	माघ वदि ६	,,	शान्तिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, (कोचरों में) बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १६१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
८९.	१५०१	माघ सुदि ५ बुधवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	पद्मप्रभ जिनालय, घाट, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ३४३
९०.	१५०१	माघ सुदि ६ गुरुवार	,,	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, मन्दसौर	वही, लेखांक ३४४
९१.	१५०३	ज्येष्ठ सुदि ११ शुक्रवार	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	बावनजिनालय, करेड़ा	नाहर, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक १९३४
९२.	१५०३	ज्येष्ठ सुदि ११		अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ८६७
९३.	१५०३	आषाढ़ सुदि ९ गुरुवार	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक ८७१
९४.	१५०४	बैशाख सुदि ६ शुक्रवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ी जी भंडार उदयपुर की एक प्रतिमा	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखांक २०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५.	१५०४	ज्येष्ठ सुदि ४	ककुदाचार्यसन्तानीय कक्कसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ८८०
९६.	१५०४	फाल्गुन सुदि ५ बुधवार	,,	कुंथुनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चौमुख जी देरासर, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक १३३
९७.	१५०५	वैशाख सुदि ६	ककुदाचार्यसन्तानीय सिद्धसूरि के शिष्य कक्कसूरि	अजितनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालय, मोतीकटरा आगरा	नाहर, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक १४७९
९८	१५०५	,,	,,	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, गोगा दरवाजा, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १९३७
९९.	१५०६	फाल्गुन वदि ८	,,	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	पंचायती मंदिर जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४१०
१००.	१५०७	ज्येष्ठ सुदि १०	;,	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक २३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[illegible]	[illegible]	ककुदाचार्यसंतानीय ककक्सूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, भिनाय	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४२४
१०२. १५०८	ज्येष्ठ सुदि २	,,	नेमिनाथ की की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, भैंसरोडगढ़	वही, लेखांक ४३२
१०३. १५०८	मार्गशीर्ष वदि २	,,	सुमतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, सांगानेर	वही, लेखांक ४३५
१०४. १५०८	माघसुदि ५ गुरुवार	ककुदाचार्यसंतानीय ...सूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३ लेखांक २३२७
१०५. १५०९	वैशाख वदि ३	ककुदाचार्यसंतानीय ककक्सूरि	सुविधिनाथ की धातुकी चौबीसी प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ देरासर मांडला	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखांक २५२
१०६. १५०९	वैशाख सुदि ३	ककुदाचार्यसंतानीय ककक्सूरि	चन्द्रप्रभ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ा मंदिर, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४३७
१०७. १५०९	माघ सुदि ५ सोमवार	,,	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, नागौर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक १२५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१०८.	१५१०	माघ सुदि ५	संतानीयककुदाचार्य कक्कसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, आसानियों का चौक, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १८९६
१०९.	१५१०	फाल्गुन सुदि ४ शुक्रवार	,,	कुंथुनाथ की प्रतिमा का लेख	वालावसही, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव, लेखांक १२७
११०.	१५११	माघ वदि ४	,,	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	कल्याणपार्श्वनाथ जिनालय वीसनगर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ४९८
१११.	१५११	माघ वदि ५ सोमवार	,,	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ जिनालय, अजीमगंज मुर्शिदाबाद	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक १३
११२.	१५११	फाल्गुन सुदी ११ सोमवार	,,	श्रेयांसनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा	खरतरगच्छीय आदिनाथ	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४८१

११३	१५१२	माघ सुदि १ बुधवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	पंचायती जैन मंदिर, लस्कर, ग्वालियर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १३७३
११४.	१५१२	माघ वदि ७ बुधवार	,,	सुमतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ा मंदिर, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४८८
११५.	१५१२	,,	,,	संभवनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	माणिकसागर जी का मंदिर, कोटा	वही, लेखांक ४८७
११६.	१५१२	माघ सुदि ७ बुधवार	,,	अनन्तनाथ की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ का पंचायती मंदिर, जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ११५३
११७.	१५१२	माघ वदि बुधवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, नागौर	वही, भाग २ लेखांक १२६१
११८.	१५१२	फाल्गुन सुदि ८ शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय ....सूरि	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	वही, भाग ३, लेखांक २३३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
११९.	१५१२	फाल्गुन सुदि १२	ककुदाचार्यसंतानीय ककसूरि	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, नागौर	वही, भाग २, लेखांक १२६३ एवं विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४९१
१२०.	१५१३	चैत्र सुदि ६ गुरुवार	,,	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	वीरजिनालय, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ८७६
१२१.	१५१३	वैशाख सुदि ३ गुरुवार	,,	अभिनन्दनस्वामी की प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, घाटकोपर, मुम्बई	मुनि कान्तिसागर, पूर्वोक्त लेखाङ्क १४२
१२२.	१५१३	आषाढ़ सुदि २ गुरुवार	,,	शीतलनाथ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, सांगानेर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखाङ्क ५१५
१२३.	१५१३	फाल्गुन वदि १२	,,	कुंथुनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ९८०
१२४.	१५१४	फाल्गुन सुदि १० सोमवार	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २३३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२५.	१५१४	फाल्गुन सुदि १० सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय ककसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय देवीकोट, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २५७७
१२६.	१५१४	,,	,,	कुंथुनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, जामनगर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखांक २९५
१२७.	१५१५	ज्येष्ठ सुदि ११ सोमवार	,,	नेमिनाथ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	केशरिया नाथ का मन्दिर, भिनाय	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ५३६
१२८.	१५१७	माघ वदि ५	,,	अजितनाथ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, जसोल, मारवाड़	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १८८३
१२९.	१५१७	माघ वदि ६ गुरुवार	,,	कुंथुनाथ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	पञ्चायती जैन मन्दिर, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ५७१
१३०.	१५१७	माघ वदि ८	,,	चन्द्रप्रभस्वामी की धातु की प्रतिमा का लेख	शान्तिनाथ जिनालय राधनपुर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ३०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१३१.	१५१७	माघ वदि ५	ककुदाचार्यसन्तानीय ककसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १२४४
१३२.	१५१७	माघ सुदि ५	,,	कुंथुनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक १००५
१३३.	१५१८	ज्येष्ठ सुदि २ शनिवार	,,	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	मनमोहन पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ७६५
१३४.	१५१८	फाल्गुन वदि ७ शनिवार	,,	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १०१३
१३५.	१५१९	वैशाख वदि ११ शुक्रवार	,,	सम्भवनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, पायधुनी, मुम्बई	कान्तिसागर, पूर्वोक्त लेखांक १६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३६.	१५२०	वैशाख वदि ५	ककुदाचार्यसन्तानीय ककसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ मुख्य बावन जिनालय, मातर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ४७५
१३७.	१५२०	वैशाख सुदि ५ बुधवार	,,	चन्द्रप्रभ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	माणिकसागरजी का मंदिर, कोटा	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ६०४
१३८.	१५२०	मार्गशीर्ष वदि १२	,,	,,	आदिनाथ जिनालय, नागौर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १२७१
१३९.	१५२१	वैशाख सुदि १०	ककुदाचार्यसन्तानीय सिद्धसूरि के पट्टधर ककसूरि	शान्तिनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	पञ्चायती जैन मन्दिर, लस्कर, ग्वालियर	वही, भाग २ लेखांक १३८९
१४०.	१५२२	पौष वदि १ गुरुवार	,,	शीतलनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त लेखांक ४०
१४१.	१५२२	माघ सुदि २ गुरुवार	ककुदाचार्यसंतानीय ककसूरि	अजितनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, खजूरीनी शेरी, राधनपुर	मुनिविशालविजय, पूर्वोक्त लेखांक २४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१४२.	१५२४	वैशाख सुदि ३ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	मोतीशाह की टूंक, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव लेखांक १८१
१४३.	१५२४	वैशाख सुदि ६ गुरुवार	,,	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, (नाहटों में) बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १८३६
१४४.	१५२४	मार्गशीर्ष वदि ३	,,	अजितनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, चाडसू	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ६४७
१४५.	१५२४	मार्गशीर्ष वदि ४ रविवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि के पट्टधर कक्कसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, आगरा	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १४४३
१४६.	१५२४	मार्गशीर्ष सुदि १० शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	चन्द्रप्रभ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख	संभवनाथ जिनालय, मुर्शिदाबाद	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४७	१५२४	मार्गशीर्ष सुदि १० शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	शीतलनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ा जैन मंदिर, नागौर	वही, भाग २ लेखांक १२७४ एवं विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ६५०
१४८.	१५२६	वैशाख वदि ५	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, अलवर	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ९९४
१४९.	१५२६	आषाढ़ सुदि २ रविवार	,,	सुविधिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	कुंथुनाथ जिनालय, रांगड़ी चौक, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १६९१
१५०.	१५२६	,,	,,	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय बीकानेर	वही. लेखांक १०४७
१५१.	१५२७	माघ सुदि ९ बुधवार	,,	शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, सरदारशहर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २३८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१५२.	१५२८	वैशाख वदि ६ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	धर्मनाथ जिनालय, जोधपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ६२५
१५३.	१५२८	"	,,	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, सुधिटोला, लखनऊ	वही, भाग २ लेखांक १५७१
१५४.	१५२९	फाल्गुन वदि १	,,	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १०६४
१५५.	१५३०	वैशाख सुदि ३	,,	अभिनन्दनस्वामी की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ९४०
१५६.	१५३०	मार्गशीर्ष वदि १२	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	चन्द्रप्रभस्वामी की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ा जैन मंदिर, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ६०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५७. १५३०	माघ सुदि १३ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	श्रेयांसनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	मनमोहन पार्श्वनाथ जिनालय, खजूरीनी पाड़ा, पाटन	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक २५२
१५८. १५३०	फाल्गुन सुदि ६	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	,,	मणिकसागरजी का मंदिर, कोटा	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ७३०
१५९. १५३१	वैशाख सुदि ५ सोमवार	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, नासिक	मुनिकान्तिसागर, पूर्वोक्त लेखांक २२०
१६०. १५३२	वैशाख सुदि ५ शनिवार	,,	शीतलनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	विमलनाथ जिनालय, सवाई माधोपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखाङ्क ७४६
१६१. १५३२	वैशाख सुदि ४ शनिवार	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, सांगानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १२२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१६२.	१५३३	पौष वदि १० गुरुवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	अरनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय सुल्तानपुरा, बड़ोदरा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक २०२
१६३.	१५३४	आषाढ़ सुदि १ गुरुवार	,,	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, रेजीडेन्सी बाजार, हैदराबाद	नाहर, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक २०५२
१६४.	१५३४	मार्गशीर्ष वदि ६ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	शान्तिनाथ जिनालय, हनुमानगढ़, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २५३०
१६५.	१५३४	मार्गशीर्ष वदि १२	,,	देवगुप्तसूरि की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, राजलदेसर	वही, लेखांक २३४१
१६६.	१५३४	माघ सुदि ९	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जी का मंदिर बीकानेर	वही, लेखांक १०८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६७.	१५३४	माघ सुदि ९	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर पाटन	जिनविजय पूर्वोक्त, भाग २ लेखांक ३५७
१६८	१५३५	आषाढ़ ··· २	,,	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, नागौर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १२९२
१६९.	१५३५	पौष वदि ९ शनिवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवचन्द्रसूरि	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर गवाड़ा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १ लेखांक ६५७
१७०.	१५३६	मार्गशिर सुदि ५	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १०९७
१७१.	१५३७	वैशाख सुदि ३	,,	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, डीसा	नाहर, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक २१०५
१७२.	१५३८	फाल्गुन सुदि ३	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ जिनालय, जैसलमेर	वही, भाग ३ लेखांक २२०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१७३.	१५४२	ज्येष्ठ सुदि ५ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	हिम्मतराम बाफना का मंदिर, अमर-सागर, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३ लेखांक २५३९
१७४.	१५४६	माघ वदि ४	,,	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	सांवलिया जी का मंदिर रामबाग, मुर्शिदाबाद	वही, भाग १ लेखांक ३०
१७५.	१५५०	आषाढ़ वदि ८ शुक्रवार	,,	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, रिणी, तारानगर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २४४४
१७६.	१५५०	माघ वदि १२ शनिवार	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक १११७

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

१७७.	१५५५	ज्येष्ठ सुदि ५ बुधवार	ककुदाचार्यसंतातीय देवगुप्तसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १२५६
१७८.	१५५…	पौष वदि ५ गुरुवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि के शिष्य देवगुप्तसूरि	अरनाथ की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २२०४
१७९.	१५५८	वैशाख सुदि ११ शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, सहादतगंज	वही, भाग २ लेखांक १६३४
१८०.	१५५८	… सुदि ११ गुरुवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि के शिष्य देवगुप्तसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर अलवर	वही, भाग १ लेखांक ९९७
१८१.	१५५९	वैशाख वदि ११ शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	"	मुनिकर्मचन्द्र हेमचन्द्रजी का मंदिर, पालिताना	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ६७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१८२.	१५५९	आषाढ़ सुदि १० बुधवार	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ जिनालय, जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ११८९ एवं विनयसागर पूर्वोक्त लेखांक ९०५
१८३.	१५६२	वैशाख सुदि १० रविवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, माणिकतल्ला, कलकत्ता	नाहर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक १२८
१८४.	१५६३	माघ सुदि ५ गुरुवार	,,	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ जिनालय, अजीमगञ्ज मुर्शिदाबाद	वही, भाग १ लेखांक २०
१८५.	१५६६	ज्येष्ठ वदि १२ शुक्रवार	,,	शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	मुनिसुव्रत जिनालय, मालपुरा	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ९२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८६.	१५६७	वैशाख सुदि १० बुधवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	धर्मनाथ जिनालय, सोहावल, फैजाबाद	नाहर, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक १६५९
१८७.	१५७१	फाल्गुन सुदि ३ शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय श्रीसिंहसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, सुधिटोला, लखनऊ	वही, भाग २ लेखांक १५७४
१८८.	१५७२	फाल्गुन सुदि ९	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	खरतरगच्छीय आदिनाथ जिनालय, कोटा	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ९५३
१८९.	१५७४	वैशाख सुदि १० शुक्रवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	धर्मनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, आगरा	नाहर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक १४५०

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१९०.	१५७६	वैशाखवदि १ रविवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि के पट्टधर कक्कसूरि	धर्मनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १२२९
१९१.	१५७९	वैशाख सुदि ६ सोमवार	ककुदाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	जगत सेठ का मंदिर महिमापुर, बंगाल	नाहर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक ७४
१९२.	१५७९	”	”	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, चाणस्मा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक १०८
१९३.	१५८५	आषाढ़ सुदि ५ सोमवार	”	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	वासुपूज्य जिनालय चम्पापुरीतीर्थ, भागलपुर, बिहार	नाहर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक १५६
१९४.	१६३४	माघ सुदि ९	ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर जूना वेडा मारवाड़	वही, भाग १ लेखांक ९२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्रतिमा लेखों के आधार पर उपकेशगच्छीयककुदाचार्य-संतानीय मुनिजनों की आचार्य-परम्परा का एक क्रम सुनिश्चित होता है, जो इस प्रकार है—

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १३१४-१३२३]

सिद्धसूरि [वि० सं० १३४६-१३७३]

कक्सूरि [वि० सं० १३७८-१४१२]

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १४२१-१४७६]

सिद्धसूरि [वि० सं० १४७७-१४९८]

कक्कसूरि [वि० सं० १४९९-१५१२]

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १५२८-१५५७]

सिद्धसूरि [वि० सं० १५६६-१५९६]

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १६३४]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ककुदाचार्यसन्तानीय आचार्यों की तालिका में उल्लिखित कक्कसूरि [वि० सं० १३७८-१४१२ प्रतिमालेख] और उनके गुरु सिद्धसूरि [वि० सं० १३४६-१३७३ प्रतिमालेख] को नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध के कर्ता कक्कसूरि और उनके गुरु सिद्धसूरि से समसामयिकता के आधार पर अभिन्न मान सकते हैं। इसी प्रकार वि० सं० १३५२ में प्रतिलिपि कृत उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधावृत्ति में उल्लिखित सिद्धसूरि भी उपरोक्त सिद्धसूरि से अभिन्न प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार ककुदाचार्य सतानीय देवगुप्तसूरि [वि० सं० १३१४-१३२३ प्रतिमालेख] तथा उपकेशगच्छप्रबन्ध और नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध के रचनाकार कक्कसूरि के प्रगुरु और सिद्धसूरि के गुरु देवगुप्तसूरि को एक ही आचार्य माना जा सकता है।

उपकेशगच्छीय मतिशेखर द्वारा रचित धन्नारास [रचनाकाल वि० सं० १५१४/ई० सन् १४५८] और वाचकविनयसमुद्र द्वारा रचित आरामशोभाचौपाई [वि० सं० १५८३/ई० सन् १५२७] की प्रशस्तियों में रचनाकार द्वारा जो गुरु-परम्परा दी गई है उसकी संगति भी ककुदाचार्यसन्तानीय गुरु-परम्परा से पूर्णतया बैठ जाती है। इनका विवरण इस प्रकार है—

धन्नारास –मरु-गुर्जर भाषा में रचित यह रचना उपकेशगच्छीय मुनि शीलसुन्दर के शिष्य मतिशेखर की अनुपम कृति है। इसकी प्रशस्ति[1] में रचनाकार ने अपनी गुरु-परम्परा और रचनाकाल का उल्लेख किया है. जो इस प्रकार है—

रत्नप्रभसूरि

|

यक्षदेवसूरि

---

१. श्री उवअेसगछ सिणगारो पहिलो रयणप्पह गणधारो,
गुणि गोयम अवतारो,
जक्खदेवसूरीय प्रसिद्धो तास पाटि जिणि जगि जस लीधो,
संयमसिरि उरिहारो।।२६।।
अनुक्रमि देवगुप्तसूरीस, सिद्धसूरि नामि तस सीस
मुणिजण सेवीय पाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगुप्तसूरि
|
सिद्धसूरि
|
कक्कसूरि
|
शीलसुन्दर
|
मतिशेखर [वि० सं० १५१४/ई० सन् १४५६ में धन्नारास के रचयिता]

मतिशेखर[1] द्वारा रचित अन्य रचनायें, यथा—मयणरेहारास, बावनी, नेमिनाथसतफुलडाफागु, कुरगडु (क्रूरघट) महर्षिरास, इलापुत्रचरित्र, नेमिगीत भी उपलब्ध होती हैं।

आरामशोभाचौपाई मरु-गूर्जर भाषा में रचित यह कृति उपकेशगच्छीय हर्षसमुद्र के शिष्य वाचक विनयसमुद्र द्वारा वि० सं०

तस पाटे संपइ जयवंतो गछनायक महिमा गुणवंतो
कक्कसूरि गुरुराय ॥२७॥
सइं हत्थि थापीय तिणि गुणहारा, गुणवन्त सीलसुन्दर सारा
वारीय जिणि अणंगो
तास सीस मतिसेहर हरसिहि पनरइ सइं चउदोत्तर वरसिहि
कीयो कवित अतिअंगो ॥२८॥
देसाई, मोहनलाल दलीचन्द—जैनगुर्जरकविओ-भाग १ (नवीन संस्करण, अहमदाबाद—१९८६ ई०) पृष्ठ १०७

१. देसाई, पूर्वोक्त, पृष्ठ १०७ और आगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५८३ में रची गयी है।[1] अद्यावधि इनकी २० रचनायें उपलब्ध हैं जो वि० सं० १५८३ से वि० सं० १६१४ के मध्य रची गयी हैं। आराम-शोभाचौपाई की प्रशस्ति में रचनाकार की जो गुरु-परम्परा प्राप्त होती है, वह इस प्रकार है—

रत्नप्रभसूरि
|
सिद्धसूरि
|
हर्षसमुद्र
|
विनयसमुद्र [वि० सं० १५८३/ई० सन् १५२६ आरामशोभाचौपाई के रचनाकार]

मृगावतीचौपाई[2] यह उपकेशगच्छीय वाचक विनयसमुद्र की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है, जो वि० सं० १६०२/ई० सन् १५४६ में रची

---

१. करि संलेहण साध्यां काज, लहिसे मुक्तिपुरीनउ राज।
उवअेसगच्छ गुणगणे गरिठ्ठ, श्री रयणप्पहसूरि वरिठ्ठ ॥४५॥
तसु अनुक्रमि संपइ सिद्धसूरि, तासु सीस वाचक गुणभूरि।
हरषसमुद्र नामि गुणसार, तासु सीसइ कहउ विचार ॥४६॥
विनयसमुद्र वाचक इम भणइं, धन्य ति नरनारी जे सुणइं।
तेहनी सीझइं सधली आस, पुणि ते लहिअे शिवपुरिवास ॥४७॥
अे आरामसोभा चउपइ, भावतणे उपरि मइं कही,
वरस व्यासिये मागसिरि मासि, बीकानयरिहि मन उल्लासि ॥४८॥
देसाई, पूर्वोक्त, पृष्ठ २८१

२. कर गयणंगण रस शशि वर्षे,
वर वैशाख मास मन हर्षे।
पञ्चमी सोमवार चउसाल,
चउपइबन्ध रची सुविशाल ॥९३॥
वीका नयरहि वीर जिणंद,
तासु पसायइं परमाणंद।
श्री उवअेसगच्छ सिणगार,
रयणपह गिरुओ गणधार ॥९४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गयी है। इस रचना की प्रशस्ति में भी वाचक विनयसमुद्र ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

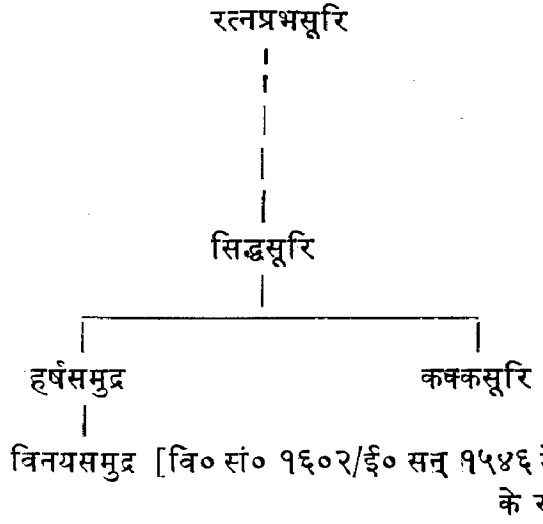

उपकेशगच्छीय वाचक मतिशेखर द्वारा वि० सं० १५३७ में रचित मयणरेहारास[1] की वि० सं० १५९१/ई० सन् १५३४ में लिखी गयी प्रतिलिपि की प्रशस्ति में उपकेशगच्छीय कक्कसूरि, उनके शिष्य उपा० रत्नसमुद्र और उनकी शिष्या साध्वीरङ्गलक्ष्मी का उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि मयणरेहारास की यह प्रतिलिपि साध्वी रङ्गलक्ष्मी के पठनार्थ लिखी गयी थी।

उक्त साक्ष्यों के आधार पर उपकेशगच्छीय ककुदाचार्यसन्तानीय मुनिजनों के आचार्य परम्परा की जो तालिका बनती है, वह इस प्रकार है—द्रष्टव्य, तालिका संख्या २

प्रकट पारसनाहथी पट्टि, बहुरिमें मुनिजननैं थट्ठि ।
श्री सिद्धसूरि संपइ सुहकार, कक्कसूरि तसु शिष्य उदार ॥९५॥
तसु आदेशि हर्षसमुद्र, वाचक तेहनै विनयसमुद्र ।
तिणि विरच्यो अे चरित रसाल, सुणियो कविवर संघ विशाल ॥९६॥
देसाई, मोहनलाल दलीचन्द—पूर्वोक्त, पृष्ठ २८२-८३

१. देसाई, मोहनलाल दलीचन्द—वही, पृष्ठ ११०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तालिका—२

साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर निर्मित उपकेशगच्छीय ककुदाचार्यसंतानीय आचार्यपरम्परा

कक्कसूरि
|
जिनचन्द्रगणि/कुलचन्द्रगणि
अपरनाम
देवगुप्तसूरि [वि० सं० १०७३/ई० सन् १०१७ में नवपदप्रकरण के रचयिता]
| [संभवतः तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की ३१ उपोद्घात्कारिका के टीकाकार]
कक्कसूरि [पंचप्रमाण के कर्ता]
| वि० सं० १०७८/ई० सन् १०२२ प्रतिमालेख
सिद्धसूरि
|
देवगुप्तसूरि [द्वितीय]
|
सिद्धसूरि
[वि० सं० ११९२/ई० सन् ११३६ में
क्षेत्रसमासवृत्ति [वि०सं० १२०३ प्रतिमालेख]
|

यशोदेव उपाध्याय पूर्वनाम धनदेव
वि० सं० ११६५/ई० सन् ११०९ में नवपदप्रकरणबृहद्वृत्ति एवं
वि० सं० ११७८/ई० सन् ११२२ में चन्द्रप्रभचरित के कर्ता

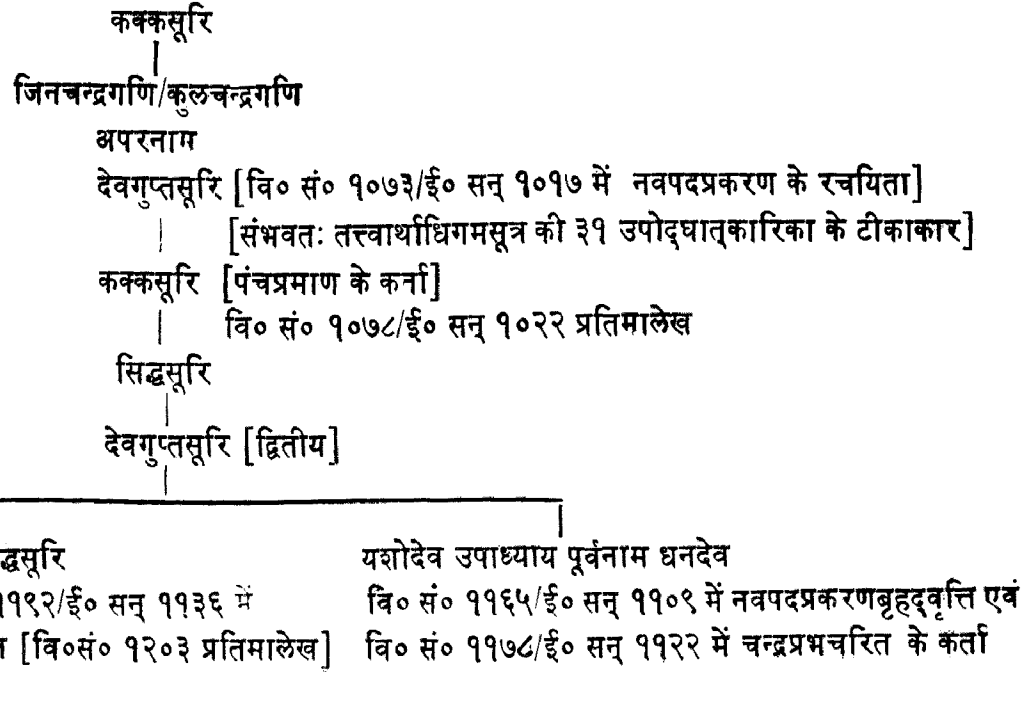

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ककसूरि (चौलुक्यनरेश कुमारपाल [वि०सं० ११९९-१२३०] के समकालीन)
वि०सं० ११७२-१२१२ प्रतिमालेख

देवगुप्तसूरि [वि०सं० १३१४-२३] प्रतिमालेख

सिद्धसूरि [वि०सं० १३४६-१३७३] प्रतिमालेख; शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारक समरसिंह के गुरु; वि०सं० १३५२ की उत्तराध्ययनसूत्रटीका में उल्लिखित

ककसूरि [वि०सं० १३७६-१४१२] प्रतिमालेख; वि०सं० १३९३/ई० सन् १३३७ में नाभिनन्दन-जिनोद्धारप्रबन्ध एवं उपकेशगच्छप्रबन्ध के रचयिता

देवगुप्तसूरि [वि०सं० १४३२-१४७६] प्रतिमालेख

सिद्धसूरि [वि०सं० १४७७-१४९८] प्रतिमालेख

ककसूरि [वि०सं० १४९९-१५१२] प्रतिमालेख

ककुदाचार्यसंतानीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर निर्मित उपकेशगच्छीय ककुदाचार्यसंतानीय आचार्य परम्परा की उक्त तालिका में वि० सं० की ग्यारहवीं शती के मध्य हुए कक्कसूरि से लेकर विक्रम की सत्रहवीं शती के बीच हुए देवगुप्तसूरि तक के आचार्य हैं। इस तालिका में चौलुक्यनरेश कुमारपाल (वि० सं० ११९९-१२३०) के समकालीन कक्कसूरि (वि० सं० ११७२-१२१२ प्रतिमालेख) और ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि (वि० सं० १३१४-१३२३ प्रतिमालेख) के मध्य लगभग १०० वर्षों का अन्तराल है। इस बीच कौन-कौन से आचार्य हुए, इस बारे में ग्रन्थप्रशस्तियों तथा प्रतिमालेखों से कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती, किन्तु उपकेशगच्छपट्टावली[1] (उपकेशगच्छ प्रबन्ध और नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध के आधार पर निर्मित) के विवरण के आधार पर इस अन्तराल को पूर्ण किया जा सकता है।

उक्त पट्टावली के अनुसार कक्कसूरि (कुमारपाल के समकालीन) के पश्चात् देवगुप्तसूरि हुये[2]। यद्यपि इस देवगुप्तसूरि का कोई प्रतिमालेख नहीं मिला है, तथापि वि० सं० १२४० के आस-पास उनका समय माना जा सकता है। पट्टावली के अनुसार देवगुप्तसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि हुये।[3] वि० सं० १२६१ के प्रतिमा लेख में उल्लिखित सिद्धसूरि संभवतः यही सिद्धसूरि हैं। पट्टावली में कहा गया है कि वि० सं० १२५२ में तुरुष्कों ने उपकेशपुर पर आक्रमण किया और यहाँ स्थित महावीर जिनालय को क्षतिग्रस्त कर दिया।[4] गच्छनायक सिद्धसूरि इस समय पाटण में थे, बाद में वि० सं० १२५५ में उन्होंने इसका जीर्णोद्धार कराया।[5] इसी पट्टावली के अनुसार सिद्धसूरि अपना पट्टधर नियुक्त करने के पूर्व ही स्वर्गस्थ हो गये, अतः श्रीसंघ ने वि० सं० १२७८ में उपाध्याय पदधारक मुनिवर्धमान को देवगुप्तसूरि के नाम से गच्छनायक बनाया।[6]

---

१. देसाई, मोहनलाल दलीचंद—जैनगुर्जरकवियो (प्रथम संस्करण) भाग ३ खंड २, पृष्ठ २२५४-२२७६

२. वही, पृष्ठ २२६५-२२६६

३. वही, पृष्ठ २२६७

४. वही, पृष्ठ २२६७

५. वही, पृष्ठ २२६८

६. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकेशगच्छ की द्वितीय पट्टावली के अनुसार महावीर और पार्श्व; दोनों की वन्दना करने के कारण वि० सं० १२६६ में उपकेशगच्छ में सिद्धसूरि से द्विवंदनीकशाखा का उदय हुआ[१]—

रस-रस-दिनकर (१२६६) वर्षे, मासे मधुमाधबे च संज्ञायाम् ।
जाता द्विवंदनीकाः, श्रीमत्सिद्धसूरिवराः ॥

उक्त विवरण से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि गच्छनायक गुरु द्वारा गच्छ की परम्परागत मान्यता के विपरीत नवीन मान्यता स्थापित करने के कारण गच्छ में मतभेद हो गया, जिससे सिद्धसूरि अपने जीवनकाल में अपना पट्टधर भी नियुक्त न कर सके, अन्त में श्रीसंघ ने गच्छ की प्राचीन मान्यताओं में श्रद्धा रखने वाले मुनिजनों की सम्मति से वि० सं० १२७८ में उपाध्याय वर्धमान को देवगुप्तसूरि के नाम से गच्छनायक के पद पर प्रतिष्ठित किया ।

प्रथम पट्टावली के अनुसार देवगुप्तसूरि का वि० सं० १३३० में ८४ वर्ष की आयु में निधन हुआ ।[२] अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर ककुदाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि द्वारा वि० सं० १३१४-१३२३ में प्रतिष्ठापित जिनप्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं, अतः समसामयिकता के आधार पर उक्त दोनों देवगुप्तसूरि एक ही आचार्य माने जा सकते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि देवगुप्तसूरि के समय से ही उपकेशगच्छ की इस प्राचीन शाखा के मुनिजन ककुदाचार्यसंतानीय कहे जाने लगे । इस प्रकार उपरोक्त तालिका के १०० वर्षों की आचार्य परम्परा का अन्तराल पूर्ण हो जाता है और उपकेशगच्छीय ककुदाचार्यसंतानीय मुनिजनों के गुरु-परम्परा की जो तालिका निर्मित होती है, वह इस प्रकार है, द्रष्टव्य-तालिका-३

---

१. मुनि जिनविजय—विविधगच्छीयपट्टावलीसंग्रह, पृष्ठ ८
२. देसाई, पूर्वोक्त, पृष्ठ २२६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तालिका—३

कक्कसूरि

जिनचन्द्रगणि कुलचन्द्रगणि

अपरनाम

देवगुप्तसूरि [वि०सं० १०७३/ई० सन् १०१७ में नवपदप्रकरण के रचनाकार]

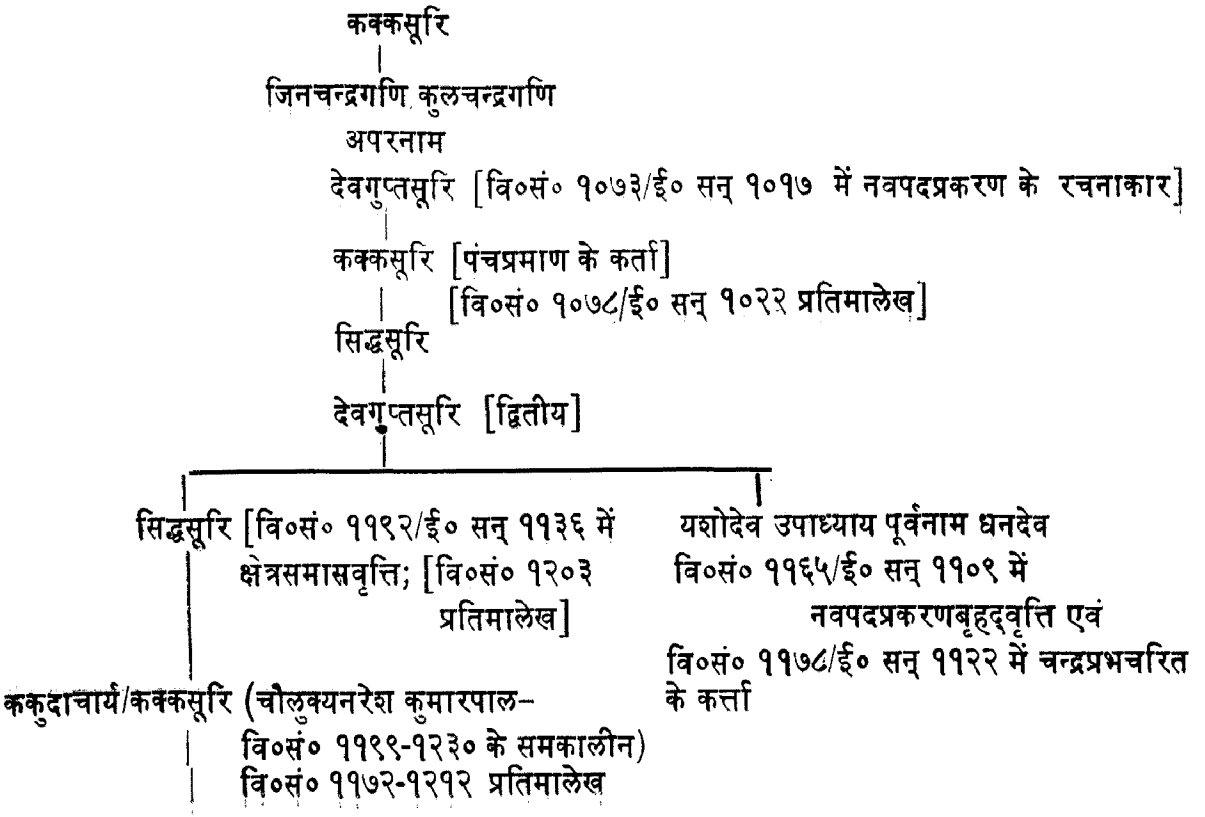

कक्कसूरि [पंचप्रमाण के कर्ता]

[वि०सं० १०७८/ई० सन् १०२२ प्रतिमालेख]

सिद्धसूरि

देवगुप्तसूरि [द्वितीय]

सिद्धसूरि [वि०सं० ११९२/ई० सन् ११३६ में क्षेत्रसमासवृत्ति; [वि०सं० १२०३ प्रतिमालेख]

ककुदाचार्य/कक्कसूरि (चौलुक्यनरेश कुमारपाल–
वि०सं० ११९९-१२३० के समकालीन)
वि०सं० ११७२-१२१२ प्रतिमालेख

यशोदेव उपाध्याय पूर्वनाम धनदेव
वि०सं० ११६५/ई० सन् ११०९ में
नवपदप्रकरणबृहद्वृत्ति एवं
वि०सं० ११७८/ई० सन् ११२२ में चन्द्रप्रभचरित के कर्त्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगुप्तसूरि

वीरदेवउपाध्याय

—द्विवंदणीकशाखा प्रारम्भ—

सिद्धसूरि [वि०सं० १२६१] प्रतिमालेख

—ककुदाचार्यसंतानीयशाखा प्रारम्भ—

देवगुप्तसूरि [वि०सं० १२७८ में पट्टधर बने]
[पट्टावली के अनुसार
वि०सं० १३३० में मृत्यु; वि०सं० १३१४-१३२३]
प्रतिमालेख

सिद्धसूरि [वि०सं० १३४६-१३७३] प्रतिमालेख;
शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारक समरसिंह के गुरु

ककसूरि [वि०सं० १३७६-१४१२] प्रतिमालेख; वि०सं० १३९३
में नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबंध एवं उपकेशगच्छप्रबंध

देवगुप्तसूरि [वि०सं० १४३२-१४७६] प्रतिमालेख

सिद्धसूरि [वि०सं० १४७७-१४९८] प्रतिमालेख

ककसूरि [वि०सं० १४९९-१५१२] प्रतिमालेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

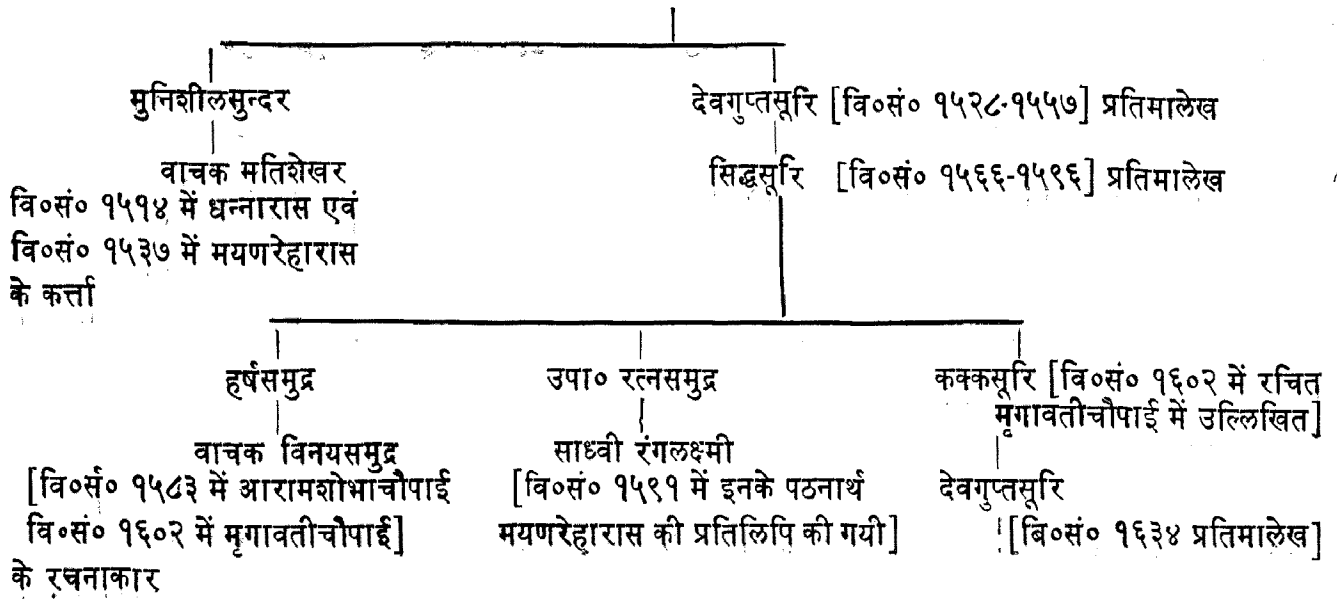

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

उपकेशगच्छीय सिद्धाचार्यसंतानीय मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित तीर्थङ्कर प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों का विवरण इस इस प्रकार है–

१	२	३	४	५	६	७
१.	१३१५ (?)	वैशाख वदि ७ गुरुवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	सिद्धसूरि की प्रतिमा का लेख	पल्लविया पार्श्वनाथ जिनालय, पालनपुर	जिनविजय, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ५५३
२.	१३३७	माघ सुदि ७	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १८९
३.	१३४४	कार्तिक सुदि १०	सिद्धाचार्यसंतानीय श्री···	महावीर की प्रतिमा का लेख	हरसूली पार्श्व-नाथ जिनालय,	विनयसागर, पूर्वोक्त-लेखांक ९४
४.	१३४७	वैशाख सुदि १५ रविवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, जूनाबेडा, मारवाड़	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ९२१
५.	१३९३	ज्येष्ठ सुदि १ शुक्रवार	,,	,,	चन्द्रप्रभ जिना-लय, कोटा	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखाङ्क १३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. १४३२	फाल्गुन सुदि ३ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	महावीर की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि-जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ५०२
७. १४४०	पौष सुदि १२ बुधवार	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक ५४१
८. १४६६	वैशाख सुदि ३ शनिवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक ६२६
९. १४७०	ज्येष्ठ सुदि ४ बुधवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि		वीर जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक १३४६
१०. १४७३	फाल्गुन सुदि १५ सोमवार	सिद्धाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	अनन्तनाथ की सपरिकर प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक १३६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
११.	१४८४	वैशाख वदि १२ रविवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहटा, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १०७२
१२.	१४८६	वैशाख सुदि ५ गुरुवार	,,	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	अनुपूर्ति लेख, आबू	मुनि जयन्तविजय संपा० अर्बुदप्राचीन जैनलेखसंदोह (आबू भाग २) लेखांक ६२२
१३.	१४८६	कार्तिक सुदि ११ सोमवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, देलवाड़ा, मेवाड़	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १९८२
१४.	१४९७	आषाढ़ वदि ८ रविवार	,,	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	मुनिसुव्रत जिनालय, राजगृह	वही, भाग १ लेखांक २३८
१५.	१५०२	वैशाख वदि ४ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	संभवनाथ जिनालय, झवेरीवाड़, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ८३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. १५०२	माघ सुदि ३ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	बावन जिनालय, पेथापुर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ६८५
१७. १५०३	ज्येष्ठ सुदि ११ शुक्रवार	,,	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ८७०
१८. १५०३	माघ सुदि ३ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरिके पट्टधर देवगुप्तसूरि	कुंथुनाथ की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, शेखनो पाडो, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक १०६५
१९. १५०४	ज्येष्ठ वदि ११ मंगलवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चौमुखजी देरासर, वडनगर	वही, भाग १ लेखांक ५६३
२०. १५०४	फाल्गुन सुदि १३ शनिवार	सिद्धाचार्यसंतानीय भट्टारक कक्कसूरि	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	मुनिसुव्रत जिनालय, खारवाडो, खंभात	वही, भाग २ लेखांक १०२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
२१.	१५०५	माघ वदि ६ गुरुवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ-गभारोमानी प्रतिमा, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ९०४
२२.	१५०६	चैत्र··· गुरुवार	,,	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, शांतिनाथ पोल, अहमदाबाद	वही भाग १ १३०५ लेखांक
२३.	१५०६	वैशाख वदि गुरुवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालय, पालिताना	शत्रुञ्जयवैभव लेखांक १०९
२४.	१५०६	फाल्गुन सुदि ९ शुक्रवार	,,	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	अनुपूर्ति लेख, आबू	आबू, भाग २, लेखांक ६३८
२५.	१५०७	ज्येष्ठ सुदि ५	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि एवं कक्कसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, पापधुनी, मुम्बई	मुनि कान्तिसागर, पूर्वोक्त, लेखांक १०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. १५०७	कार्तिक सुदि ११ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय ककसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	बड़ा जैन मंदिर, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ४१७
२७. १५०८	वैशाख वदि ९ शनिवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, बडावली	वही, लेखांक ९६
२८. १५०८	वैशाख सुदि ५ सोमवार	,,	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ९२५
२९. १५०९	आषाढ़ वदि २ गुरुवार	,,	श्रेयांसनाथ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ जिनालय, टोडारायसिंह	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४३९
३०. १५१०	चैत्र वदि १० शनिवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ८५८
३१. १५११	माघ सुदि ८ बुधवार	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथदेरासर, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक १२३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
३२.	१५११	वैशाख वदि ११ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, लखनऊ	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १५०४
३३.	१५१२	फाल्गुन सुदि १२	,,	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	धर्मनाथ जिनालय, जोधपुर	वही, भाग १ लेखांक ६२३
३४.	१५१२	,,	,,	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ९६०
३५.	१५१५	मार्गशीर्ष सुदि १० गुरुवार	सिद्धाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	चौमुख शांतिनाथ देरासर, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ८९०
३६.	१५१९	ज्येष्ठ सुदि १३ सोमवार	,,	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	बावन जिनालय, पेथापुर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ६८०
३७	१५१९	आषाढ़ वदि ५ सोमवार	,,	अभिनन्दनस्वामी की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. १५१९	माघ वदि ५ बुधवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	कुंथुनाथ की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, शेखनो पाडो, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक १०९४
३९. १५२१	वैशाख वदि २ रविवार	,,	,,	—	वही, भाग १ लेखांक ७७०
४०. १५२१	आषाढ़ सुदि ९ गुरुवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय राजलदेसर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २३३९
४१. १५२१	आषाढ़ सुदि ९ गुरुवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय (कोचरों में), बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १६०३
४२. १५२५	ज्येष्ठ वदि १ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	बासुपूज्य की धातु की प्रतिमा का लेख	सम्भवनाथ जिनालय, मुर्शिदाबाद	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ५१
४३. १५२५	फाल्गुन सुदि ९ सोमवार	,,	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, जसकौर धर्मशाला, पालिताना	शत्रुञ्जयवैभव लेखांक १८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
४४.	१५२७	आषाढ़ सुदि २ गुरुवार	मिद्धाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	संभवनाथ की धातु की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	वीरजिनालय, तंबोणी शेरी, राधनपुर	मुनि विशाल-विजय, पूर्वोक्त, लेखांक २५४
४५.	१५२७	पौष वदि ५ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ जिनालय, नागौर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १३२२
४६.	१५२७	पौष वदि ५ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि	कुन्थुनाथ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	कुन्थुनाथ जिनालय, गोगोलाब	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ६९३
४७.	१५२७	,,	,,	,,	चौसठिया जी का मन्दिर, नागौर	वही, लेखांक ६९४
४८	१५२८	चैत्र वदि ५ रविवार	,,	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, भिण्डी बाजार, मुम्बई	कान्तिसागर, पूर्वोक्त लेखांक २०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. १५३२	चैत्र सुदि ४ शनिवार	सिद्धाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १०७१
५०. १५३३	आषाढ़ सुदि २ रविवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवप्रभसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जगवल्लभ पार्श्वनाथ देरासर, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक १२०५
५१. १५३४	फाल्गुन वदि ३ शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १०९०
५२. १५३७	पौषवदि १० बुधवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	श्रेयांसनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	सामला पार्श्वनाथ जिनालय, डभोई	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ३२
५३. १५३(?)	ज्येष्ठ सुदि ११ शुक्रवार	,,	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ११०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
५४.	१५४०	वैशाख सुदि १० बुधवार	सिद्धाचार्यसंतानीय भ० धर्मसुन्दरसूरि एवं सिद्धसूरि	मुनिसुव्रत की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	मुनिसुव्रत जिनालय, सैलाना	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ८२२
५५.	१५४९	ज्येष्ठ वदि १० शुक्रवार	सिद्धाचार्यसंतानीय धर्मसुन्दरसूरि के पट्टधर ककसूरि	आदिनाथ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, बीवड़ोद, मध्यप्रदेश	वही, लेखांक ८५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर निर्मित उपकेशगच्छीय सिद्धाचार्यसंतानीय शाखा के आचार्य परम्परा की तालिका

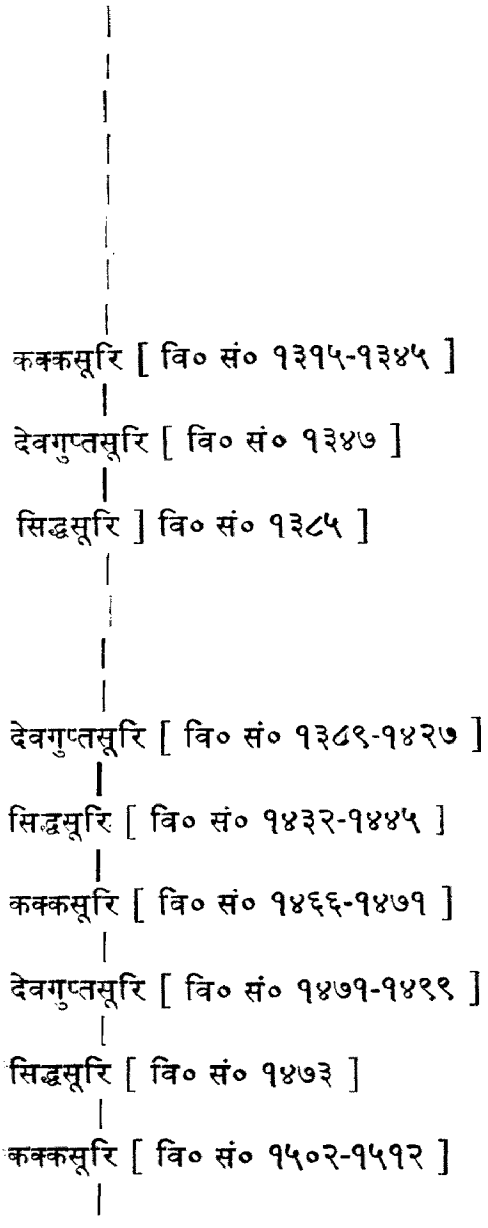

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १५०३-१५२१]

सिद्धसूरि [वि० सं० १५१५-१५४०]

ककसूरि [वि० सं० १५३७-१५४९]

अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर सिद्धाचार्यसंतानीय मुनिजनों की तालिका ऊपर प्रदर्शित की गयी है। साहित्यिक साक्ष्यों द्वारा भी उपकेशगच्छीय-सिद्धाचार्यसंतानीय कुछ मुनिजनों के नाम ज्ञात होते हैं, इनका विवरण इस प्रकार है—

उत्तराध्ययनसूत्र सुखबोधावृत्ति की प्रतिलेखन प्रशस्ति

उपकेशगच्छीय सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि के शिष्य विनयप्रभ उपाध्याय ने वि०सं० १४७९ में अपने गुरु की आज्ञा से स्वपठनार्थ वडगच्छीय आचार्य नेमिचन्द्रसूरी की प्रसिद्ध कृति उत्तराध्ययनसूत्र-सुखबोधावृत्ति की प्रतिलिपि करायी।[1] इसके अन्त में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा दी है, जो इस प्रकार है—

सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि

विनयप्रभ उपाध्याय
[वि० सं० १४७९ / ई० सन् १४२३

१. संवत् १४७९ वर्षे ज्येष्ठ सुदि षष्ठ्यां रवौ श्री श्री **उपकेशगच्छे** श्री सिद्धाचार्यसंताने··· ··· ··· ··· ···· ··· ··· ··· ···· ··· ··· ··· ···

एवंविधगुणोपेतभट्टारकश्रीश्रीदेवगुप्तसूरीणामादेशेन शिष्याणुरुपाध्याय श्रीविनयप्रभेण आत्मपठनार्थं श्रीनेमिचन्द्रसूरिविरचिता श्रीउत्तराध्ययनलघु-वृत्तिर्निजसंच (?) पुस्तके निजगुर्वाज्ञया लिखापिता लेषकेन लिखिता श्रीउत्तराध्ययनवृत्तिः संपूर्णा ॥

Kapadiya, H. R.—Descriptive Catalogue of the Govt Collections of the Mss deposited at the B. O. R. I, Pune Volume XVII Part III (Pune – 1940) Pp. 32-33.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

–में इनके पठनार्थ उत्तराध्ययनसूत्र
सुखबोधावृत्ति की प्रतिलिपि की गयी]

यद्यपि इस प्रशस्ति से उपकेशगच्छीय सिद्धाचार्यसंतानीय दो मुनिजनों के नाम ही ज्ञात होते हैं, फिर भी उपकेशगच्छ की उक्त शाखा के इतिहास की दृष्टि से यह प्रशस्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अजापुत्रचौपाई[1] यह उपकेशगच्छीय सिद्धाचार्यसंतानीय मुनि धर्मरुचि द्वारा मरु-गूर्जर भाषा में वि० सं० १५६१ में रची गयी है। रचना के अन्त में मुनि धर्मरुचि ने अपनी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

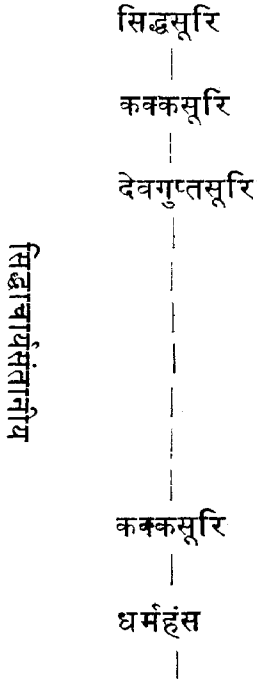

१. संवत पन्नर वरस अेकसठ्ठि, वैशाख पंचमी शुदि गुरुहिं गरिठ्ठा।
नक्षत्र मृगशिर योग सकर्मा, कीधी चउपई दिन जाणी ॥३४॥
उवअेसगच्छ तणा शृंगार, सिद्धसूरि गुरु लब्धिभंडार।
सद्गुरु नामइ गच्छ संतान, वंदिइ भवियण महिमानिधान ॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मरुचि [वि० सं० १५६१ / ई० सन् १५०५ में
अजापुत्रचौपाई के रचनाकार]

साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर निर्मित उपकेश-गच्छीय सिद्धाचार्यसंतानीय शाखा के आचार्यों की तालिका

तालिका–४

?

कक्कसूरि [वि० सं० १३१५-२३४५] प्रतिमालेख

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १३४७] प्रतिमालेख

सिद्धसूरि [वि० सं० १३८५] प्रतिमालेख

कक्कसूरि तस पाटि मुणींद, आगम कमला विकासन दिणंद ।
लोपी मिथ्यामय विषकंद समकित अमृतकला गुरु चंद ॥३६॥
सूरि शीरोमणी देवगुप्त, जाइ पाय जस नाम पवित्त ।
विघ्न टलइ सवि संपद मिलइ, गुरु नामइ चिंतित फलइ ॥३७॥
चिंतामणी कामधेनु समान, रत्नत्रय जिम नाम प्रधान ।
अलिय निवारी देव सचि आवी, वीरजिणेश्वर नमइशि भावि ॥३८॥
कक्कसूरि केरा शिष्य, श्री धर्महंस पय नामक शिष्य ।
धर्म्मरुचि बोलइ तास पसाइ, रची चउपइ अजापुत्रराय ॥३९॥
देसाई, पूर्वोक्त, पृष्ठ २१८-२१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १३८९-१४२७] प्रतिमालेख

सिद्धसूरि [वि० सं० १४३२-१४४५] प्रतिमालेख

कक्कसूरि [वि० सं० १४६६-१४७१] प्रतिमालेख

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १४७१-१४९९] प्रतिमालेख

विनयप्रभउपाध्याय [वि० सं० १४७९/ ई० सन् १४२३ की उत्तराध्यनसुखवोधा-वृत्ति की प्रतिलिपि में उल्लिखित]	सिद्धसूरि [वि० सं० १४७३] प्रतिमालेख
	कक्कसूरि [वि० सं० १५०२-१५०८] प्रतिमालेख
	देवगुप्तसूरि [वि० सं० १५०३-१५०७] प्रतिमालेख
	सिद्धसूरि [वि० सं० १५२५-१५४०] प्रतिमालेख
	कक्कसूरि [वि० सं० १५३७-१५४९] प्रतिमा लेख
	धर्महंस
	धर्मरुचि [वि० सं० १५६१ / ई० सन् १५०५ में अजापुत्रचौपाई के रचनाकार]

उपकेशगच्छीय सिद्धाचार्यसंतानीय शाखा के आचार्यों की परम्परा की पूर्वोक्त तालिका संख्या ४ को अविभाजित उपकेशगच्छ की पूर्व प्रदर्शित तालिका–१ से समायोजिता तो किया जा सकता है, किन्तु दोनों के मध्य लगभग १०० वर्षों का जो अन्तराल है, उसे पूरा करने में साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों से कोई सहायता प्राप्त नहीं होती। उक्त दोनों तालिकाओं के समायोजन से गुरु-शिष्य परम्परा की जो नवीन तालिका निर्मित होती है, वह इस प्रकार है—

द्रष्टव्य-तालिका–५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

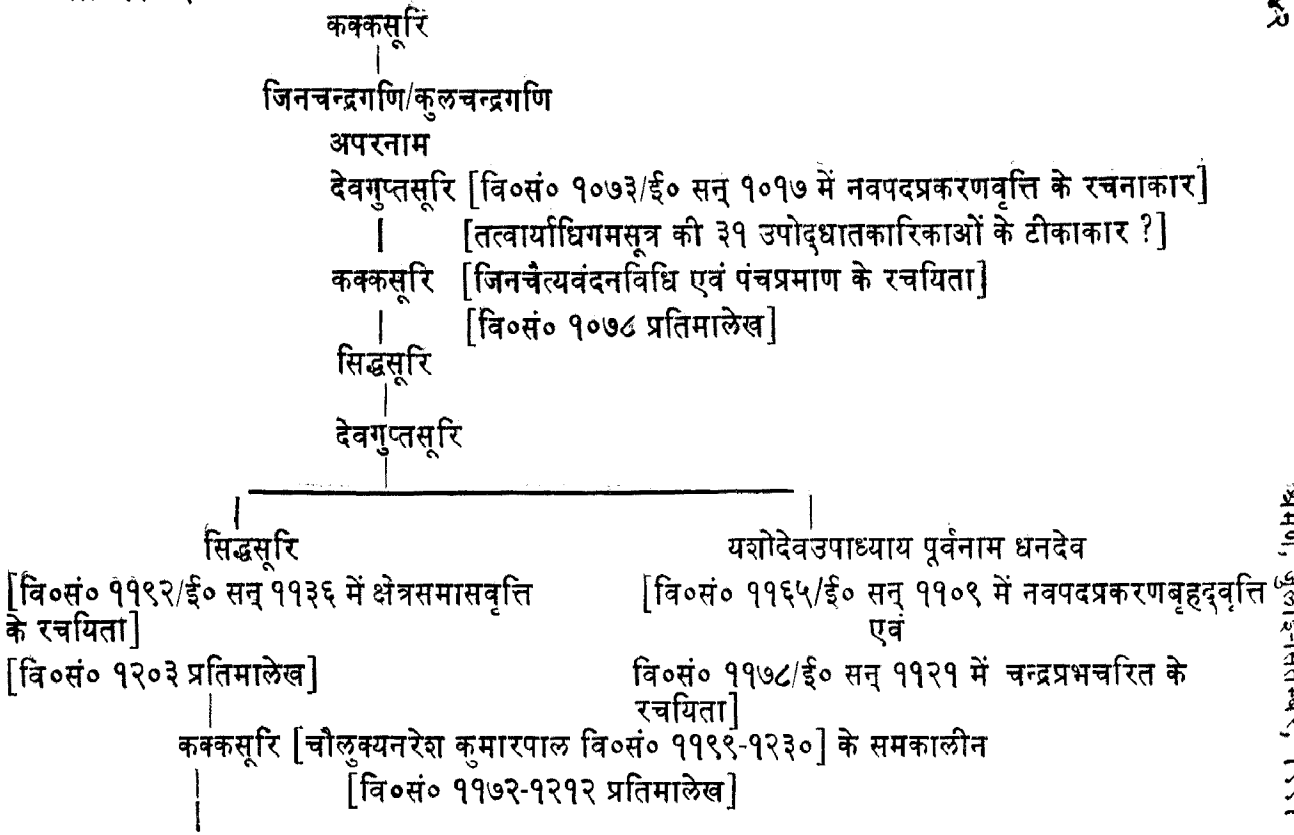

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

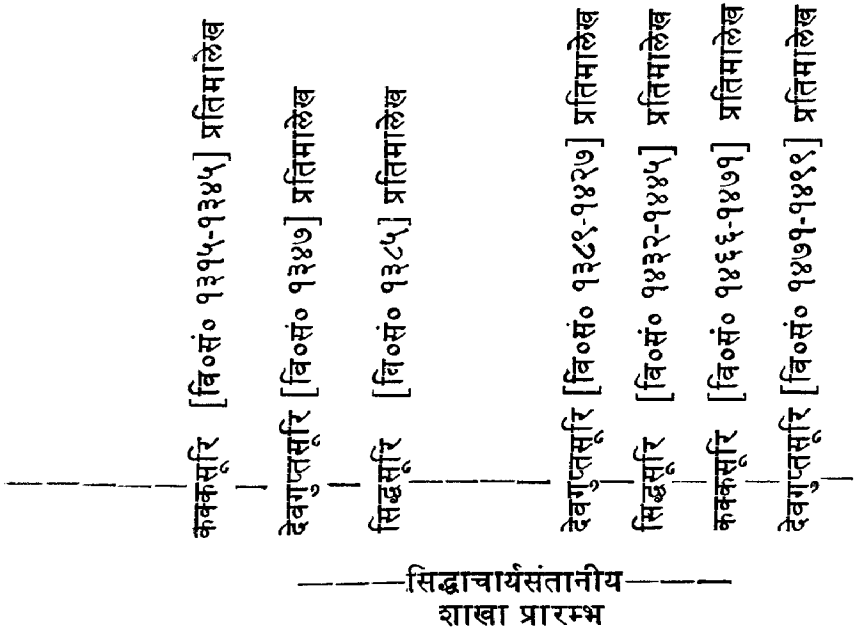

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनयप्रभउपाध्याय
[वि०सं० १४७९/ई० सन् १४२३ की
उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधावृत्ति की
प्रतिलिपि में उल्लिखित

सिद्धसूरि [वि०सं० १४७३] प्रतिमालेख

ककसूरि [वि०सं० १५०२-१५०८] प्रतिमालेख

देवगुप्तसूरि [वि०सं० १५०३-१५०७]

सिद्धसूरि [वि०सं० १५२५-१५४०]

ककसूरि [वि०सं० १५३७-१५४९]

धर्महंस

धर्मरुचि
[वि०सं० १५६१/ई० सन् १५०५ में
अजापुत्रचौपाई के रचनाकार]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर उपकेशगच्छ की उक्त शाखाओं (ककुदाचार्यसंतानीय और सिद्धाचार्यसंतानीय) के अतिरिक्त इस गच्छ की एक अन्य शाखा द्विवंदणीकगच्छ या विवंदणीकगच्छ का भी पता चलता है। उपकेशगच्छपट्टावली के अनुसार वि० सं० १२६६ (ई० सन् १२१०) में सिद्धसूरि द्वारा आगमिकगच्छ की सामाचारी और सूरिमंत्र अपनाने के कारण इस शाखा का जन्म हुआ। संभवतः पार्श्व और महावीर दोनों की वन्दना करने के कारण ये द्विवंदणीक कहलाये। इस शाखा की कोई पट्टावली नहीं मिलती है[1]। इस शाखा से सम्बद्ध वि० सं० १३३४ से १५९९ तक के प्रतिमालेख प्राप्त हुए हैं। इस शाखा के १६वीं शती के कुछ प्रतिमालेखों में प्रतिमा प्रतिष्ठापक आचार्य को सिद्धाचार्यसंतानीय कहा गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि उपकेशगच्छ की द्विवंदणीकशाखा और सिद्धाचार्यसंतानीयशाखा का निकट सम्बन्ध रहा है। इस शाखा के मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित जिनप्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों का विवरण इस प्रकार है—

१. मुनि कान्तिसागर—शत्रुञ्जयवैभव, पृष्ठ १२६-१२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकेशगच्छ (द्विवंदणीक/विवंदणीक शाखा) से सम्बद्ध अभिलेखीय साक्ष्यों का विवरण

१	२	३	४	५	६	७
१.	१३३४	ज्येष्ठ वदि २ सोमवार	सिद्धसूरि	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, वीरमगाम	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक १५११
२.	१४४७	फाल्गुन सुदि ८ सोमवार	रत्नप्रभसूरि	अजितनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चौसठियाजी का मंदिर, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक १७३
३.	१४७९	पौष वदि ५ सोमवार	देवगुप्तसूरि	जिनप्रतिमा बनवाने का उल्लेख	जैन देरासर, सौदागर पोल, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक ७९६
४.	१५०३	माघ सुदि ७ बुधवार	श्री ···सेनसूरि	शीतलनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ देरासर, अहमदाबाद	विनयसागर, पूर्वोक्त-लेखांक ३७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. १५०८	वैशाख सुदि ५ शनिवार	देवगुप्तसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, कूबा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक ७६८
६. १५१२	मार्गशीर्ष वदि २ बुधवार	सिद्धसूरि	कुन्थुनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	गौड़ीजी भंडार. उदयपुर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक २७४
७. १५१७	वैशाख सुदि ३ सोमवार	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथदेरासर, पाटण	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक २३५
८. १५१७	,,	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, वढवाण	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखांक ३१२
९. १५१७	पौष वदि ८ रविवार	,,	शीतलनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	देरी न० ६१३/९।९ शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयगिरिराज-दर्शन, लेखांक २७४ एवं शत्रुञ्जयवैभव लेखांक १५५
१०. १५२१	वैशाख सुदि ३ गुरुवार	देवगुप्तसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, चाणस्मा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक १०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. १५२१	वैशाख सुदि ३ गुरुवार	देवगुप्तसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, चाणस्मा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक १११
१२. १५२१	माघ वदि ५ गुरुवार	सिद्धसूरि	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, ऊंझा	वही, भाग १, लेखांक १८८
१३. १५२२	पौष सुदि १२ सोमवार	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथमुख्य-बावन जिनालय, मातर	वही, भाग २— लेखांक ४९२ एवं जिनविजय, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक ४९२
१४. १५२४	वैशाख सुदि ३	श्री……?	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	मुनिसुव्रत जिनालय, भरुच	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ३५०
१५. १५२५	चैत्र वदि ९ शनिवार	अस्पष्ट	सुविधिनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, अजमेर	विनयसागर, पूर्वोक्त-लेखांक ६२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. १५३१	माघ वदि ८ सोमवार	सिद्धसूरि	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ मुख्यबावन जिनालय, मातर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ५०९
१७. १५३३	वैशाख सुदि ३ बुधवार	सिद्धाचार्यसंतानीय सिद्धसूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	सीमंधर स्वामी का मंदिर, अहमदाबाद	वही, भाग १— लेखांक ११७३
१८. १५४७	वैशाख सुदि ३ सोमवार	सिद्धसूरि	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	बालावसही, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव लेखांक २३७
१९. १५४७	,,	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक २३८
२०. १५५२	वैशाख सुदि ३ शनिवार	सिद्धाचार्यसंतानीय कक्कसूरि	मुनिसुव्रत की चौबीसी प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, ऊँझा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक १५७
२१. १५५३	माघ सुदि ६ सोमवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, भाय-खला, मुम्बई	कान्तिसागर, पूर्वोक्त— लेखांक २६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. १५६०	वैशाख सुदि ३	कक्कसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ, जिनालय, भिंडी बाजार, मुम्बई	कान्तिसागर, पूर्वोक्त, लेखांक २७३
२३. १५६०	,,	,,	,,	चिन्तामणिपार्श्व-नाथ जिनालय, जीरारपाडो, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ७२५
२४. १५६१	ज्येष्ठ सुदि २ बुधवार	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ चौमुख-जिनालय, चेला-पोल, खंभात	वही, भाग २, लेखांक ६९१
२५. १५६६	माघ वदि ६	सिद्धसूरि के पट्टधर कक्कसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	वालावसही, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव, लेखांक २६३
२६. १५६७	वैशाख सुदि १०	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ९६८
२७. १५७०	कार्त्तिक वदि ५ गुरुवार	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ देरासर, अहमदाबाद	वही, भाग १-लेखांक १०७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८.	१५७५	माघ वदि २ सोमवार	सिद्धाचार्यसंतानीय .....?	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, भिंडी बाजार, मुम्बई	कान्तिसागर, पूर्वोक्त, लेखांक २८७
२९.	१५८३	वैशाख सुदि ३	देवगुप्तसूरि	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	वालावसही, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव, लेखांक २७८
३०.	१५८९	वैशाख सुदि १२ सोमवार	भट्टारक कक्कसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि-पार्श्वनाथ जिनालय, जीरारपाडो, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ७२१
३१.	१५९९	ज्येष्ठ वदि २ रविवार	सिद्धाचार्यसंतानीय देवगुप्तसूरि	चन्द्रप्रभस्वामी की प्रतिमा का लेख	धर्मनाथ जिनालय, उपलो गभारो, अहमदाबाद	वही, भाग १, लेखांक १११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्रतिमालेखों के आधार पर द्विवंदणीकशाखा के मुनिजनों के गुरु-परम्परा की एक तालिका बनती है, जो इस प्रकार है—

सिद्धसूरि [वि० सं० १३३४]

रत्नप्रभसूरि [वि० सं० १४४७]

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १४७९-१५०८]

सिद्धसूरि [वि० सं० १५१२-१५४७]

कक्कसूरि [वि० सं० १५५२-१५८९]

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १५६७-१५९९]

विवंदणीक / द्विवंदणीकगच्छीय कक्कसूरि के प्रशिष्य एवं देवगुप्तसूरि के शिष्य सिंहकुल ने वि० सं० १४८५ (एक अन्य प्रति में वि० सं० १५५०) में मुनिपतिचरित्र की रचना की।[1]

अभिलेखीयसाक्ष्यों के आधार पर निर्मित द्विवंदणीकशाखा के मुनिजनों की उक्त तालिका में देवगुप्तसूरि नामक दो आचार्यों का उल्लेख है। मुनिपतिचरित्र की दो हस्तप्रतियों में भी इसके रचनाकाल

१. देसाई, मोहनलाल दलीचन्द-जैनगूर्जकवियो-भाग १, (नवीन संस्करण, बम्बई १९८५) पृष्ठ १९४-१९६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की दो तिथियां वि० सं० १४८५ और वि० सं० १५५० दी गयी हैं। अब हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि रचनाकार सिंहकुल किस देवगुप्तसूरि के शिष्य थे और मुनिपतिचरित्र के रचनाकाल की कौन सी तिथि सत्य है ?

जहां तक द्विवंदणीकगच्छीय प्रथम देवगुप्तसूरि का सम्बन्ध है, चूँकि उनके द्वारा प्रतिष्ठापित जिनप्रतिमायें वि० सं० १४७९ से १५०८ तक की हैं और मुनिपतिचरित्र की एक प्रति में इस कृति का रचनाकाल वि०सं० १४८५ दिया गया है, अतः समसामयिकता के आधार पर मुनिपतिचरित्र के कर्ता द्विवंदणीकगच्छीय सिंहकुल द्विवंदणीकगच्छीय देवगुप्तसूरि 'प्रथम' (वि० सं० १४७९-१५०८) के ही शिष्य कहे जा सकते हैं और यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मुनिपतिचरित्र की द्वितीय प्रति में उल्लिखित रचनाकाल वि० सं० १५५० अवश्य ही भ्रामक है और यह लिपिकार की भूल का परिणाम है।

विक्रम की १६वीं शती के पश्चात् उपकेशगच्छ की ककुदाचार्यसंतानीय तथा द्विवंदनीकगच्छ आदि शाखाओं से सम्बद्ध साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों का नितान्त अभाव है, अतः यह कहा जा सकता है कि इस समय (१६वीं शती के पश्चात्) तक उपकेशगच्छ की उक्त शाखाओं का अस्तित्व समाप्त हो गया था। उपकेशगच्छ की जो शाखा २०वीं शती तक अस्तित्व में रही, वह निश्चय ही इन शाखाओं से भिन्न रही है।

सिद्धाचार्यसंतनीय मुनिजनों की परम्परा आगे चल कर १६वीं शती में संभवतः अपना प्रभाव कम होने पर द्विवंदनीकगच्छ [उपकेशगच्छ की एक शाखा, जिसका वि० सं० १२६६ में आविर्भाव हुआ] में सम्मिलित हो गयी प्रतीत होती है, क्योंकि १६वीं शती के कई प्रतिमालेखों में आचार्य के नाम के साथ द्विवंदनीकगच्छीयसिद्धाचार्यसंतानीय यह विशेषण जुड़ा हुआ मिलता है।

एक संभावना यह भी है कि सिद्धसूरि, जिनसे वि० सं० १२६६/ ई० सन् १२१० में द्विवंदनीकशाखा का उदय हुआ, की शिष्य सन्तति अपने गुरु के नाम पर सिद्धाचार्यसंतानीय एवं पार्श्वनाथ तथा महावीर-दोनों की वन्दना करने के कारण द्विवंदनीक कहलायी। संभवतः यही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण है कि उपकेशगच्छ की इस शाखा के प्रतिमा लेखों में कहीं द्विवंदनीकगच्छ और कहीं सिद्धाचार्यसंतानीय तथा किन्हीं-किन्हीं लेखों में दोनों विशेषणों का साथ-साथ प्रयोग मिलता है।

उपकेशगच्छ से सम्बद्ध ऐसे भी अनेक प्रतिमालेख प्राप्त हुए हैं जिनमें प्रतिमा प्रतिष्ठापक आचार्य न तो ककुदाचार्यसंतानीय बतलाये गये हैं और न ही सिद्धाचार्यसंतानीय। इससे यह स्पष्ट होता है कि उक्त शाखाओं (सिद्धाचार्यसंतानीय, ककुदाचार्यसंतानीय तथा द्विवंदनीक शाखा) से भिन्न इन मुनिजनों की परम्परा का अपना स्वतंत्र अस्तित्व था। इस श्रेणी के अभिलेखीय साक्ष्यों का विवरण इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकेशगच्छीय आचार्यों / मुनिजनों/यतियों से सम्बद्ध अभिलेखीय साक्ष्यों का विवरण

१	२	३	४	५	६	७
१.	१३१४	फाल्गुन सुदि ३ शुक्रवार	देवगुप्तसूरि	नेमिनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूरनचन्द पूर्वोक्त-भाग ३, लेखांक २२२६
२.	१३२३	माघ सुदि ६	,,	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथदेरासर, पाटण	बुद्धिसागर पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक २३७
३.	१३२५	फाल्गुन सुदि ४ शुक्रवार	कक्कसूरि	,,	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहर, पूरनचन्द पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक १०३८
४.	१३३७	फाल्गुन सुदि २	देवगुप्तसूरि के पट्टधर पद्मचन्द्र	गणपति की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर नं० १, लोद्रवा	नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखांक २५६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
५.	१३४६	फाल्गुन सुदि २	सिद्धसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय, जैसलमेर	नाहर, भाग ३, लेखांक २२३८
६.	१३५६	तिथि विहीन	कक्कसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	बावनजिनालय, करेड़ा	वही, भाग २, लेखांक १९२३
७.	१३७८	ज्येष्ठ वदि ९ सोमवार	,,		देहरी नं० ३९, विमलवसही आबू	मुनि कल्याण-विजय, पूर्वोक्त लेखांक १०५ एवं मुनिजयन्तविजय आबू, भाग २ लेखांक १३६
८.	१३८५	वैशाख वदि ५ बुधवार	सिद्धसूरि	महावीर की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर	नाहटा, अगरचन्द, पूर्वोक्त, लेखांक ३०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. १३८५	फाल्गुन सुदि ..... !	कक्कसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १०४३
१०. १३८९	ज्येष्ठ वदि ११ सोमवार	देवगुप्तसूरि	,,	आदिनाथजिनालय, मालपुरा	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक १३१
११. १३९४	वैशाख वदि ६	पानशालि (?) सूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ३६४
१२. १३९४	तिथि विहीन	कक्कसूरि	महावीर की प्रतिमा का लेख	देहरी न० ५० विमलवसही, आबू	मुनिकल्याण-विजय-प्रबन्ध-पारिजात लेखांक १३७
१३. १३९७	,,	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ३७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१४.	१४००	वैशाख सुदि ३	,,	समवशरण के अंकन पर उत्कीर्ण लेख	सीमंधरस्वामी का मंदिर, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-२ लेखांक १०७६
१५.	१४०३	वैशाख सुदि……!	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, पायधुनी, मुम्बई	कान्तिसागर पूर्वोक्त लेखांक ३४
१६.	१४०६	फाल्गुन सुदि ११	सिद्धसूरि के पट्टधर कक्कसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ४१०
१७.	१४१२	वैशाख सुदि ३	कक्कसूरि	,,	जैन मंदिर, जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ४०१
१८.	१४१४	वैशाख सुदि १० गुरुवार	कक्कसूरि के शिष्य देवगुप्तसूरि	,,	शत्रुञ्जय	A. P. Shah- Some Inscriptions on Mount Satrunjaya"

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

						महावीरजैन विद्यालयसुवर्ण जयन्तीअंक, भाग १ पृष्ठ १६७, लेखांक ४
१९.	१४२०	वैशाख सुदि १० शुक्रवार	रत्नप्रभसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ४४४
२०.	१४३०	तिथि विहीन	देवगुप्तसूरि	जिन प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २२७४
२१.	१४३६	वैशाख वदि ११	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ५२४
२२.	१४३६	,,	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखाङ्क ५२५
२३.	१४३९	पौष वदि··· सोमवार	देवगुप्तसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, गीपटी, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २ लेखांक ६९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
२४.	१४४५	पौष सुदि १२ बुधवार	सिद्धसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, चेलापुरी, दिल्ली	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ४६०
२५.	१४५७	वैशाख सुदि ३ शनिवार	रामदेवसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, नमकमंडी, आगरा	वही, भाग २ लेखांक १४९०
२६.	१४६५	वैशाख सुदि ३ गुरुवार	देवगुप्तसूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ६१७
२७.	१४६८	वैशाख वदि ४ शुक्रवार	,,	,,	,,	वही, लेखांक ६३८
२८.	१४६८	ज्येष्ठ वदि १३ रविवार	,,	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	विजयधर्मसूरि पूर्वोक्त, लेखांक, १०३ एवं नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १०६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९.	१४७१	माघ सुदि ६ गुरुवार	कक्कसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, मेड़तासिटी	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक २०४
३०.	१४७१	माघ सुदि १३ बुधवार	देवगुप्तसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय, मेड़ता सिटी	वही, लेखांक २०५ एवं नाहर, पूर्वोक्त, भाग १ लेखांक ७७४
३१.	१४७२	फाल्गुन सुदि ९	देवगुप्तसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १२१६
३२.	१४७३	ज्येष्ठ वदि ५	,,	,,	,,	वही, लेखांक ६६६
३३.	१४७६	फाल्गुन सुदि १२	सिद्धसूरि के शिष्य कक्कसूरि	,,	,,	वही, लेखांक ६८३
३४.	१४८२	ज्येष्ठ वदि ४	सिद्धसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक ७१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
३५.	१४८५	वैशाख सुदि ५	कक्कसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २१७९
३६.	१४८५	ज्येष्ठ सुदि १३ सोमवार	सिद्धसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, मिरर स्ट्रीट-कलकत्ता	वही, भाग १, लेखांक ३८९
३७.	१४८८	वैशाख सुदि ६	कक्कसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	वही, भाग ३ लेखांक २३०२
३८.	१४९१	माघ सुदि ५ बुधवार	सिद्धसूरि	पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, लखनऊ	वही, भाग २ लेखांक १५४६
३९.	१४९२	चैत्र वदि ५ शुक्रवार	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ७५६
४०.	१४९४	तिथिविहीन	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २४११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१.	१४९९	वैशाख वदि १ शनिवार	देवगुप्तसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथजिनालय, कोट, मुम्बई	मुनिकान्तिसागर पूर्वोक्त, लेखांक ८९
४२.	१५०१	फाल्गुन सुदि १३ शनिवार	कक्कसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ८५७
४३.	१५०२	माघ सुदि ५	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	पद्मप्रभजिनालय जयपुर	विनयसागर पूर्वोक्त, लेखांक ३६२
४४.	१५०३	माघ सुदि २ शुक्रवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	माणिकसागरजी का मंदिर, कोटा	वही, लेखांक ३७१
४५.	१५०४	तिथिविहीन	,,	अम्बिका की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	संभवनाथ देरासर, कड़ी	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १ लेखांक ७४७
४६.	१५०५	आषाढ़ सुदि ९	,,	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय, आमेर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ३९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
४७.	१५०५	आषाढ़ सुदि ९	कक्कसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ का पंचायती मंदिर जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २ लेखांक ११४८
४८.	१५०६	आषाढ़ सुदि ५ बुधवार	देवगुप्तसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	सीमंधरस्वामी का मंदिर अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक ११५२
४९.	१५०७	चैत्र वदि ५ शनिवार	कक्कसूरि	,,	चन्द्रप्रभजिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग ३, लेखांक २३२५
५०.	१५०८	वैशाख सुदि ५ सोमवार	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	शंखेश्वरपार्श्वनाथ-जिनालय, आसानियों का चौक बीकानेर	वही, भाग २ लेखांक १३३२ एवं नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १९०७
५१.	१५०८	वैशाख सुदि ५	कक्कसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १२८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२.	१५०८	वैशाख सुदी ५	कक्कसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १३७४
५३.	१५०८	वैशाख सुदि ६	,,	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	घर देरासर बड़ोदरा	मुनिबुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखांक २२१
५४.	१५०९	वैशाख वदि ११ शुक्रवार	,,	कुन्थुनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात	वही, भाग २ लेखांक ७७१
५५.	१५०९	मार्गशीर्ष सुदि ९	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	बालावसही, शत्रुञ्जय	मुनिकान्तिसागर शत्रुञ्जयवैभव लेखांक १२२
५६	१५०९	चैत्र वदि ११ शुक्रवार	,,	मुनिसुव्रत की धातु प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय, वेरावल	मुनिविजयधर्म-सूरि, पूर्वोक्त, लेखांक २५१
५६अ	१५०९	मार्गशीर्ष सुदि ९	,,	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	शान्तिनाथजिनालय, (नाहटों में) बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १८३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
५७.	१५११	माघ सुदि २ शनिवार	कक्कसूरि	शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	नेमिनाथ जिनालय, महुआ	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४७९
५८.	१५१२	माघ सुदि ५ सोमवार	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, वडनगर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक ५५३
५९.	१५१२	फाल्गुन सुदि ८	,,	श्रेयांसनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	विजयगच्छीय जैन मंदिर, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ४९२
६०.	१५१३	चैत्र सुदि ६ गुरुवार	,,	नमिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	विमलनाथ जिनालय, सवाईमाधोपुर	वही, लेखांक ४९९
६१.	१५१४	माघ सुदि १ शुक्रवार	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	संभवनाथ देरासर, कड़ी	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक ७२७

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

६२. १५१५	फाल्गुन सुदि ९ रविवार	,,	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, अजमेर	नाहर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक ५३४
६३. १५१८	मार्गशीर्ष वदि ५	,,	कुन्थुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	षार्श्वनाथ जिनालय, सोजत रोड	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखांक ५८२
६४. १५१९	ज्येष्ठ वदि ११ शुक्रवार	,,	सुमतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	संभवनाथ जिनालय, अजमेर	वही, लेखांक ५९३ एवं नाहर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक ५५८
६५. १५२०	बैशाख वदि ३ सोमवार	,,	चन्द्रप्रभ की धातु की प्रतिमा का लेख	गौड़ी जी का मंदिर, उदयपुर	विजयधर्मसूरि पूर्वोक्त-लेखांक ३४८ एवं नाहर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ११२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. १५२०	मार्गशीर्ष सुदि ९ शनिवार	कक्कसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	अमीझरा पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ७५३
६७. १५२३	माघ सुदि ६ रविवार	सिद्धसूरि के पट्टधर कक्कसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक १५०३
६८. १५२४	ज्येष्ठ वदि ४	,,	अजितनाथ की पाषाण की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभजिनालय, बाबापुरी	नाहर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक २२६
६९. १५२५	ज्येष्ठ वदि १	,,	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक ९१९
७०. १५२५	माघ वदि ६ सोमवार	,,	कुन्थुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, भैंसरोड़गढ़	विनयसागर, पूर्वोक्त-लेखांक ६७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१.	१५२५	फाल्गुन सुदि १२	कक्कसूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, भरुच	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक २९७
७२.	१५२८	ज्येष्ठ वदि ३ बुधवार	,,	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक १३०१
७३.	१५२८	माघ वदि ४ बुधवार	देवगुप्तसूरि	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक १०५९
७४.	१५३१	वैशाख सुदि २ सोमवार	श्रावकों का उल्लेख		लूणवसही, आबू	आबू-भाग २, लेखांक ३३८
७५.	१५३४	आषाढ़ सुदि १ गुरुवार	कक्कसूरि के पट्टधर देवगुप्तसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक १२१९
७६.	१५३६	आश्विन सुदि ९ सोमवार	कक्कसूरि के पट्टधर देवगुप्तसूरि	अम्बिका की प्रतिमा का लेख	जमुनादासकोठारी का घर देरासर, बड़ोदरा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक २३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
७७.	१५३६	फाल्गुन सुदि ३	,,	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, आसाणियों का चौक, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त- लेखांक १८९८
७८.	१५४२	माघ सुदि २ शनिवार	,,	सुमतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जोमनेर	विनयसागर, पूर्वोक्त- लेखांक ८२९
७९.	१५४४	आषाढ़ वदि ८ गुरुवार	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	संभवनाथ जिनालय, फूलवालीगली, आगरा	नाहर, पूर्वोक्त- भाग २, लेखांक १६०३
८०.	१५४५	पौष वदि···	,,	—	अजितनाथ जिनालय, शेखनो पाडो, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त- भाग १, लेखांक १०१४
८१.	१५४६	आषाढ़ वदि २	देवगुप्तसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, नागौर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १२९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२.	१५४६	आषाढ़ सुदि २ शनिवार	,,	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, (नाहरों में) बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक १५१८
८३.	१५४९	वैशाख सुदि १० शुक्रवार	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	गांव का जैन मंदिर, वालावसही, पालिताना	नाहर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक ६७६ एवं शत्रुञ्जयवैभव लेखांक २४६
८४.	१५५१	माघ वदि २	,,	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, राजलदेसर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक २३३७
८५.	१५५६	वैशाख सुदि ६ शनिवार	देव (?) सूरि	चतुर्मुख प्रासाद देवकुलिका का लेख	रैनपुर तीर्थ	नाहर, पूर्वोक्त-भाग १, लेखांक ७१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
८६.	१५५७	वैशाख सुदि ५ गुरुवार	देवगुप्तसूरि	वासुपूज्य की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ जिनालय, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त- लेखांक ८९०
८७.	१५५९	आषाढ़ सुदि २	,,	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहर., पूर्वोक्त- भाग २, लेखांक ११०१
८८.	१५५९	आषाढ़ सुदि १०	,,	सुमतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	संभवनाथ जिनालय, अजमेर	वही, भाग १, लेखांक ५६६ एवं विनयसागर, पूर्वोक्त- लेखांक ९०३
८९.	१५५९	मार्गशिर वदि ६	,,	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, हनुमानगढ़ (बीकानेर)	नाहटा, पूर्वोक्त- लेखांक २५३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०. १५६३	वैशाख सुदि ६ शनिवार	श्रीसूरि	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	अरनाथ जिनालय जिनालय जीरारा-याड़ो, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त- भाग २, लेखांक ७७२
९१. १५६६	चैत्र सुदि १	मुनिदेवसागर के निधन का उल्लेख		उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त- लेखांक २१३१
९२. १५६६	फाल्गुन सुदि ३ सोमवार	सिद्धसूरि	नमिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का उल्लेख	बड़ा मंदिर, नागौर	नाहर, पूर्वोक्त- भाग २, लेखांक १३०० एवं विनयसागर, पूर्वोक्त लेखांक ९३३
१५९३. ६८	ज्येष्ठ वदि ८ रविवार	देवगुप्तसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि	अरनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि-पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त- भाग २, लेखांक ५३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
९४.	१५७१	आषाढ़ सुदि २	कक्कसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	शान्तिनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक ११३५
९५.	१५७२	चैत्र वदि ३ बुधवार	सिद्धसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, सुधि टोला, लखनऊ	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १५७६
९६.	१५७८	माघ सुदि ४ गुरुवार	,,	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, भायखला, मुम्बई	मुनि कान्तिसागर-पूर्वोक्त, लेखांक १९४
९७.	१५९२	आषाढ़ सुदि ९	,,	अभिनन्दन स्वामी की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ा मंदिर, नागौर	बिनयसागर, पूर्वोक्त-लेखांक ९८८ एवं नाहर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक १३०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९८. १५९३	ज्येष्ठ वदि ४ मंगलवार	सिद्धसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	वीरजिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक ८२७२
९९. १५९३	आषाढ़ सुदि ४ गुरुवार	,,	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, भूरों का वास, बीकानेर	वही, लेखांक २२३७
१००. १५९४	कार्तिक वदि ९	,,	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	श्री गंगा गोल्डेन जुबिली म्यूजियम, बीकानेर	वही, लेखांक २१६१
१०१. १५९६	वैशाख सुदि ३ सोमवार	सिद्धसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, आसानियों का चौक, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक १९०३ एवं नाहर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक १३४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१०२.	१६३८	वैशाख सुदि १५	यति श्री वस्ता के दिवंगत होने का उल्लेख	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखक ११३२
१०३.	१६५९	भाद्रपद सुदि ७ शनिवार	सिद्धसूरि	,,	जैनमंदिर, नाणा	नाहर, पूर्वोक्त– भाग १, लेखांक ८९०
१०४.	१६६३	प्रथम चैत्र सुदि ८ शुक्रवार	विनयसमुद्रसूरि के शिष्य (यति) अचल-समुद्रसूरि के निधन का उल्लेख	,,	उपकेशगच्छ की बागीची बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त- लेखांक २१३३
१०५.	१६६३	माघ वदि ९ सोमवार	श्रीवस्ता के शिष्य यतितिहुणा का निधन	,,	,,	वही, लेखांक २१३४
१०६.	१६६४	वैशाख सुदि ११ सोमवार	(यंति) तिहुणा के शिष्य श्रीराणा का निधन	,,	उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	वही, लेखांक २१३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०७.	१६८९	भाद्रपद सुदि ४ गुरुवार	देवगुप्तसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि का निधन	—	उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक २१३६
१०८.	१६९१	भाद्रपद सुदि ५	कक्कसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, राजलदेसर	वही, लेखांक २३४०
१०९.	१७६३	श्रावण सुदि १ सोमवार	आनन्दकलश के शिष्य अमीपाल के पट्टधर यति खेतसी का निधन		उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	वही, लेखांक २१३९
११०.	१७८१	आषाढ़ सुदि १३	कर्पूरप्रियगणि	चौबीसी प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, रङ्गपुर, बंगाल	नाहर, पूर्वोक्त-भाग २, लेखांक १०२४
१११.	१७८३	आषाढ़ सुदि १५ रविवार	सिद्धसूरि के निधन की तिथि का उल्लेख		उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक २१४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
११२.	१७९५	वैशाख सुदि ३ गुरुवार	देवगुप्तसूरि के पट्टधर भामसुन्दर के शिष्य कल्याणसुन्दर एवं लब्धिसुन्दर द्वारा पौषधशाला बनवाने का उल्लेख		उपकेशगच्छ का उपाश्रय, बीकानेर	नाहटा पूर्वोक्त-लेखांक २५५४
११३.	१८०५	पौष सुदि २-३ रविवार	सिद्धसूरि के शिष्य (यति) क्षमासुन्दर		उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	वही, लेखांक २१४२
११४.	१८०७	आषाढ़ सुदि १५ रविवार	कक्कसूरि के निधन का उल्लेख		,,	वही, लेखांक २१४१
११५.	१८३८	तिथि विहीन	क्षमासुन्दर के शिष्य (यति) उदयसुन्दर का निधन		,,	वही, लेखांक २१४३
११६.	१८४६	चैत्र वदि ३ बुधवार	देवगुप्तसूरि के निर्वाण की तिथि का उल्लेख		उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक २१४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११७.	१८६०	चैत्र सुदि ८ रविवार	(यति) बखतसुन्दर के निधन का उल्लेख			वही, लेखांक २१४५
११८.	१८९०	माघ सुदि ६ शनिवार	सिद्धसूरि के निधन की तिथि का उल्लेख			वही, लेखांक २१४६
११९.	१८९१	,,	कक्कसूरि के पट्टधर सिद्धसूरि के पट्टधर क्षमासुन्दर के पट्टधर जयसुन्दर के शिष्य (यति) मतिसुन्दर के चरणचिह्न स्थापित होने का उल्लेख			वही, लेखांक २१४७
१२०.	१८९१	—	,,		,,	वही, लेखांक २१४८
१२१.	१९०५	माघ सुदि ५	देवगुप्तसूरि	गिरनारतीर्थपट्ट पर उत्कीर्ण लेख	वीर जिनालय बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त-लेखांक १२६९
१२२.	१९०५	माघ सुदि ५ सोमवार	,,	सिद्धचक्रमंडल पर उत्कीर्ण लेख	,,	वही, लेखांक १२६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१	२	३	४	५	६	७
१२३.	१९०५	माघ सुदि ५ सोमवार	देवगुप्तसूरि	गणधर की पादुका पर उत्कीर्ण लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	वही, लेखांक १२६८
१२४.	१९०५	,,	,,	पार्श्वनाथ के गणधर की पादुका पर उत्कीर्ण लेख	,,	वही, लेखांक १२६६
१२५.	१९०५	,,	,,	पंचकल्याणक पट्ट पर उत्कीर्ण लेख	,,	वही, लेखांक १२६५
१२६.	१९१२	मार्गशीर्ष वदि ५	,,	सर्वतोभद्रयंत्र पर उत्कीर्ण लेख	,,	वही. लेखांक १२४७
१२७.	१९१२	मार्गशीर्ष वदि ४ बुधवार	,,	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	विमलनाथ जिनालय, (कोचरों में) बीकानेर	वही, लेखांक १५६७
१२८.	१९१५	...सुदि ५ सोमवार	(यति) आनन्दकलश के निधन का उल्लेख		उपकेशगच्छ की बगीची, बीकानेर	वही, लेखांक २१४९
१२९.	१९१८	ज्येष्ठ वदि १० सोमवार	(यति) आनन्दसुन्दर के शिष्य (यति) खूब-सुन्दर का उल्लेख		,,	वही, लेखांक २१५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकेशगच्छीय मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित तीर्थङ्कर प्रतिमाओं एवं चरणचिन्हों पर उत्कीर्ण लेखों के आधार पर इस गच्छ के मुनिजनों की जो तालिका निर्मित होती है, वह इस प्रकार है—

कक्कसूरि [प्रतिमालेख अनुपलब्ध]
|
देवगुप्तसूरि [वि० सं० १३१४-१३२३]
|
सिद्धसूरि [वि० सं० १३४६-१३८५]
|
कक्कसूरि [वि० सं० १३५६-१४१२]
|
देवगुप्तसूरि [वि० सं० १३८९-१४३९]
|
सिद्धसूरि [वि० सं० १४४५]
|
कक्कसूरि [वि० सं० १४७१-१४८८]
|
देवगुप्तसूरि [वि० सं० १४६५-१४९९]
|
सिद्धसूरि [वि० सं० १४८२-१४९४]
|
कक्कसूरि [वि० सं० १५०१-१५२८]
|
देवगुप्तसूरि [वि० सं० १५२८-१५५९]
|
सिद्धसूरि [वि० सं० १५६६-१५९६]
|
कक्कसूरि [प्रतिमालेख अनुपलब्ध]
|
देवगुप्तसूरि [,, ,,]
|

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धसूरि [वि० सं १६५९-१६८९]
वि० सं० १६८९ में दिवंगत

|

कक्कसूरि [वि० सं० १६९१———?]

|

देवगुप्तसूरि [प्रतिमालेख अनुपलब्ध]

|

सिद्धसूरि [वि० सं० १७८३ में दिवंगत]

|

कक्कसूरि [प्रतिमालेख अनुपलब्ध]

|

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १८४६ में दिवंगत]

|

सिद्धसूरि [वि० सं० १८९० में दिवंगत]

|

कक्कसूरि [प्रतिमालेख अनुपलब्ध]

|

देवगुप्तसूरि [वि० सं० १९०५-१९१२]

प्रतिमालेख

उपकेशगच्छ से सम्बद्ध १८वीं-१९वीं शती के कुछ प्रतिमाओं पर इस गच्छ के यतिजनों के नाम भी मिलते हैं,[1] परन्तु इनके आधार पर इन यतिजनों की गुरु-परम्परा की कोई तालिका नहीं बन पाती है।

उपकेशगच्छ से सम्बद्ध प्रतिमालेखों की उक्त तालिका से स्पष्ट है कि विक्रम की १६वीं शती तक इस गच्छ के मुनिजनों का विशेष प्रभाव रहा, किन्तु १७वीं शताब्दी से इस गच्छ के प्रभाव में कमी आने लगी, फिर भी २०वीं शती तक इस गच्छ का निर्विवाद रूप से अस्तित्व बना रहा।

१. नाहटा, अगरचन्द भंवरलाल—बीकानेरजैनलेखसंग्रह, लेखाङ्क २१३१-२१५१

[इस निबन्ध के लेखन में मुनि ज्ञानसुन्दर की प्रसिद्ध कृति भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास भाग १-२ तथा श्री मांगीलाल भूतोड़िया द्वारा लिखित इतिहास की अमरबेल : ओसवाल से भी विशेष सहायता प्राप्त हुई है, अतः लेखक उनके प्रति विशेष आभार प्रकट करता है।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन-जगत्

श्री पंजाब जैन भ्रातृ सभा (बम्बई)

लाला श्री जोगिन्दर लाल जैन का भव्य सत्कार

संवत्सरी के पावन पर्व पर उक्त सभा द्वारा महान् समाजसेवी श्री जोगिन्दर लाल जैन का भव्य स्वागत किया गया। आपका जन्म अम्बाला शहर में हुआ, प्रारम्भ से ही आपकी रुचि समाज तथा धर्म सेवा में रही है। नवयुवकों को धार्मिक कार्यों के लिए संगठित करने में आपकी विशेष रुचि रही है। पिछले १७ वर्षों से सभा की विविध गतिविधियों में आपका सक्रिय योगदान रहता है।

पण्डित दलसुखभाई मालवणिया का सम्मान एवं अभिनन्दन ग्रन्थ-विमोचन

(दिनांक २१–२२ दिसम्बर, १९९१)

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान के मार्गदर्शक एवं ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद के भूतपूर्व निदेशक, जैन-विद्या के बहुश्रुत विद्वान् पं० दलसुखभाई मालवणिया के अभिनन्दन समारोह का आयोजन श्री दीपचन्द जी भूरा अमृत महोत्सव समिति, कलकत्ता की ओर से किया गया। इस अवसर पर दीपचन्दजी भूरा परिवार की ओर से आदरणीय पण्डित जी को ३१००० रु० की सम्मान निधि प्रदान की गई। पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित पं० दलसुख भाई मालवणिया अभिनन्दन ग्रन्थ का विमोचन प्रसिद्ध साहित्यकार श्री कन्हैयालाल जी सेठिया ने किया। संस्थान के निदेशक डा० सागरमल जैन ने विद्याश्रम परिवार की ओर से पंडित जी को शाल ओढ़ाकर यह अभिनन्दन ग्रन्थ प्रस्तुत किया। विद्वानों ने पंडित जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला और कहा कि पं० दलसुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाई मालवणिया न केवल जैन विद्या के शीर्षस्थ विद्वान् हैं अपितु वे एक महामानव भी हैं।

इसी प्रसंग पर आदरणीय पं० दलसुख भाई मालवणिया ने आगम, अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर की ओर से प्रकाशित और श्री सुरेश सिसोदिया द्वारा अनूदित महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक का विमोचन किया। अपने सम्मान के प्रत्युत्तर में पं० जी ने कहा—'यह मेरा सम्मान नहीं अपितु जैन विद्या का सम्मान है, मैं तो समाज का अत्यन्त आभारी हूँ कि उसने मेरे व्यक्तित्व के निर्माण से लेकर आज तक मुझे स्नेह और आदर प्रदान किया।' ज्ञातव्य है कि इन्हीं कार्यक्रमों की शृङ्खला में 'जैन जर्नल रजत जयंती महोत्सव समिति, तेरापन्थी जैन सभा एवं स्थानकवासी जैन सभा की ओर से भी पण्डित जी का सम्मान किया गया।'

जैन जर्नल रजत जयन्ती महोत्सव समिति ने 'जैन जर्नल' के यशस्वी सम्पादक एवं जैनविद्या के समर्पित साधक श्री गणेश ललवानी का भी सम्मान किया और उन्हें १२५००० रु० की सम्माननिधि प्रदान की गयी। इसी प्रसंग पर जैन भवन की ओर से 'जैन्थोलोजी' एवं जैन जर्नल रजत जयन्ती अंक तथा पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी द्वारा प्रकाशित एवं (श्रीमती) डा० राजेश जैन द्वारा लिखित 'मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म' नामक पुस्तक का विमोचन हुआ। इन सभी कार्यक्रमों का संचालन श्री भूपराज जी जैन ने किया और श्री सरदारमल कांकरिया ने आभार व्यक्त किया।

डा० सागरमल जैन
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी–५

जैन साधना पर संगोष्ठी

श्री स्थानकवासी जैन सभा, कलकत्ता द्वारा दिनांक २०-१२-९१ को जैन भवन में जैन साधना पर एक विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी के मुख्य अतिथि श्री भँवरलाल जी नाहटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे। गोष्ठी में पण्डित दलसुखभाई मालवणिया, प्रो० सागरमल जैन प्रो० ए० के० बनर्जी सहित अनेक विद्वानों ने जैन साधना पर सारगर्भित व्याख्यान दिये। उपस्थित श्रोताओं की ओर से जैन साधना से सम्बन्धित अनेक प्रश्न एवं जिज्ञासाएं प्रस्तुत की गई जिसका सम्यक् समाधन प्रो० सागरमल जैन द्वारा किया गया।

सुरेश सिसोदिया
आगम, अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान,
उदयपुर

आत्म-जन्म जयन्ती महोत्सव

श्री आत्माराम जैन मेमोरियल ट्रस्ट, लुधियाना द्वारा दि० २१-२२ सितम्बर को 'आत्म-जन्म-जयन्ती महोत्सव' का भव्य आयोजन किया गया। इस आयोजन में आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी महाराज के गुणानुवाद हेतु विविध कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। इन कार्यक्रमों में श्वेता० जैन परम्परा की तीनों धाराओं के साधु-साध्वियों ने भाग लिया एवं आचार्यश्री के चरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। इसी महोत्सव में 'आत्म रश्मि' के सम्पादक श्री तिलकधर शास्त्री का बहुमान किया गया तथा श्री हीरालाल जैन के प्रशंसनीय कार्यों का उल्लेख किया गया। श्री तिलकधर शास्त्री, श्री टी० आर० जैन एवं श्री हीरालाल जैन आदि ने 'विश्व मैत्री एवं विश्व-एकता पर व्याख्यान दिये और अन्त में साध्वी (डा०) मुक्ति प्रभा एवं साध्वी (डा०) दिव्य प्रभा के मंगल पाठ के साथ महोत्सव पूर्ण हुआ।

स्वाध्यायियों के लिए सुनहरा अवसर

अनुयोग प्रवर्तक पं० रत्न मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० 'कमल' द्वारा सम्पादित एवं आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद से प्रकाशित समवायांगसूत्र (मूल पाठ) शुद्ध व सुन्दर संस्करण, दुरङ्गी छपाई सरल हिन्दी शीर्षकों से युक्त गुटका साइज में प्रकाशित हुआ है। इसका मूल्य २१/- है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह उदार दाताओं की ओर से स्वाध्याय प्रेमी, मुनिराज, महासतियां जीव पुस्तकालय को भेंट भेजी जा रही है। इच्छुक सज्जन दीपावली तक २ रुपये के डाक टिकट भेज कर इसे प्राप्त करें :—

डॉ० सोहनलाल जी संचेती
केसरवाड़ी, चांदी हाल,
जोधपुर (राज०) ३४२००१

शोक समाचार

जैन विद्या के विशिष्ट विद्वान् एवं वयोवृद्ध सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द जी शास्त्री का देहावसान ३१ अगस्त १९९१ को हो गया। आपने अपना पूरा जीवन जैन साहित्य की सेवा में समर्पित कर दिया था, आपकी मृत्यु से जैन साहित्य जगत की अपूरणीय क्षति हुई है। विद्याश्रम परिवार आपकी दिवंगत आत्मा की शान्ति हेतु प्रार्थना करता है।

× × ×

लाला श्री अमरचन्द्र जैन की धर्म पत्नी श्रीमती सुशीला देवी जैन का २९ अगस्त १९९१ को निधन हो गया। आप पार्श्वनाथ विद्याश्रम के सचिव श्री भूपेन्द्रनाथ जी जैन के बड़े भ्राता श्री अमरचन्द जी जैन की पत्नी थीं। आपके निधन से विद्याश्रम परिवार ने अपना सहयोगी खो दिया है। विद्याश्रम परिवार मृतात्मा की शान्ति की प्रार्थना करता है तथा उनके परिजनों से और विशेष रूप से उनके सुपुत्र इन्द्रभूति जी से धैर्य धारण करने का निवेदन करता है।

साभार प्राप्ति : श्री कनकनन्दी जी द्वारा रचित एवं धर्म-दर्शन विज्ञान शोध-प्रकाशन (बड़ौत, मेरठ) द्वारा प्रकाशित १७ ग्रन्थ प्राप्त हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, सिद्धान्त चक्रवर्ती एलाचार्य, उपाध्याय श्री कनकनन्दीजी द्वारा रचित ग्रन्थ

आपको जानकर हर्ष होगा कि जैन धर्म की वैज्ञानिकता, दार्शनिकता एवम् तत्वज्ञता से सभी वर्गों के परिचय हेतु—'धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन' कार्यरत है। वर्तमान वैज्ञानिक युग की पीढ़ी, बुद्धिजीवी वर्ग एवं जैन-जैनेतर बन्धुओं की मानसिकता को दृष्टिगत कर रची गई सभी पुस्तकें आपको स्वयं अपने अन्तर्मन में उमड़ते प्रश्नों का ही उत्तर प्रतीत होगीं।

उपाध्याय कनकनन्दी जी की लेखनी से भूगोल, विज्ञान, भौतिक विज्ञान, जीवविज्ञान, राजनीति, रसायन विज्ञान, खगोल, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, आयुर्वेद, मनोविज्ञान, ऋद्धि, सिद्धि, स्वप्न विज्ञान, ध्यान-योग, इतिहासादि सभी को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है।

प्रकाशित पुस्तकें

१. धर्म विज्ञान बिन्दु (मूल्य १५.०० रु०)
२. धर्म ज्ञान एवं विज्ञान (हिन्दी व अंग्रेजी) (मूल्य १५ ००)
३. भाग्य एवं पुरुषार्थ (हिन्दी व अंग्रेजी) मूल्य (७ ०० रु०)
४. Fate and Efforts (मूल्य ७·००)
५. व्यसन का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण (हिन्दी) (मूल्य २०·०० रु०)
६. Nakedness of Digambar Jain Saints and Kesh-Lonch. (Rs. ५·००)
७. जिनार्चना पुष्प—I एवं पुष्प II (मूल्य २१ ०० रु० प्रति भाग)
८. धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान पुष्प – I पुष्प II (मूल्य २०·०० रु० प्रति भाग)
९. पुण्य-पाप मीमांसा (मूल्य १५·०० रु०)
१०. निमित्त उपादान मीमांसा (मूल्य ७·०० रु०)
११. धर्म-दर्शन एवं विज्ञान (मूल्य २१·०० रु०)
१२. क्रान्ति के अग्रदूत (मूल्य १०·०० रु०)
१३. लेश्या-मनोविज्ञान (मूल्य ६·०० रु०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. ऋषभ पुत्र भरत से भारत (मूल्य १९.०० रु०)
१५. ध्यान का एक वैज्ञानिक विश्लेषण (मूल्य १५.०० रु०)
१६. अनेकान्त दर्शन (मूल्य २०.००)
१७. कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन (मूल्य २५.००)
१८. युग निर्माता ऋषभदेव (मूल्य १५.०० रु०)
१९. विश्व शान्ति के अमोघ उपाय (मूल्य ५.००)
२०. मनन एवं प्रवचन (मूल्य ५.००)
२१. अहिंसामृतम् (मूल्य ७.००)
२२. विनय मोक्षद्वार (मूल्य ५.००)
२३. क्षमा वीरस्य भूषणं (मूल्य १५.००)
२४. संगठन के सूत्र (मूल्य ८.००)
२५. अतिमानवीय शक्ति (मूल्य २१.००)
२६. मन्त्र विज्ञान (मूल्य १०.००)
२७. Philosophy of Scientific Religion (Rs. १५.००)
२८. दिगम्बर जैन साधु का नग्नत्व एवं केशलोंच (हिन्दी व अंग्रेजी, मराठी) (मूल्य ५.०० प्रति पुस्तक)
२९. धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प—I एवं II (मूल्य ५.००)
३०. संस्कार (हिन्दी व अंग्रेजी) (मूल्य ५.००)
३१ भगवान् महावीर और उनका दिव्य सन्देश (मूल्य ५.००)
३२. विश्व विज्ञान रहस्य (मूल्य १००.००)
३३. Religious and Scientific analysis of Vyasan (मूल्य २०.००)
३४. स्वप्न विज्ञान (मूल्य १५.००)
३५. त्रैलोक्यपूज्य ब्रह्मचर्य (मूल्य १२.००)
३६. आत्मोत्थानोपायः तप (मूल्य ९.००)
३७. तत्त्वानुचिन्तन (मूल्य १२.००)
३८. धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प—III (मूल्य ७.००)

प्रकाशक की ओर से साधु-संघों, स्वाध्याय-शालाओं, धार्मिक शिक्षण संस्थाओं, शोधरत छात्रों, असमर्थ भाई-बहिनों को पुस्तकें निःशुल्क भेंट की जाती हैं। पुस्तकालय, वाचनालय शिक्षण संस्थाओं के लिए १५% छूट पर शास्त्र भेज दिये जायेंगे। सामान्य स्वाध्याय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेमियों के लिए १०% छूट है, डाक खर्च अलग से है। आजीवन सदस्य २५०२ ०० द्रव्य दाता, आजीवन सदस्य, कार्य-कर्त्ताओं को संस्था की समस्त पुस्तकें निःशुल्क मिलतीं हैं। आर्थिक दृष्टि से समर्थ सामान्य व्यक्ति से योग्य मूल्य इसलिए प्राप्त किया जाता है कि जिससे साहित्य का अवमूल्यन न हो, योग्य व्यक्ति को साहित्य प्राप्त हो, साहित्य का आदर हो, साहित्य-प्रकाशन के लिये ज्ञान दान (सहयोग) हो, साधु आदि को निःशुल्क साहित्य भेजने में आर्थिक आपूर्ति हो एवं उस सहयोग से अधिक से अधिक साहित्य प्रकाशन, प्रचार, प्रसार हो। द्रव्यदाता को उस द्रव्य से प्रकाशित प्रतियों की एक दशमांश प्रतियां भी निःशुल्क प्राप्त होगीं।

निवेदक

धर्म-दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन
निकट दिगम्बर जैन अतिथि भवन
बड़ौत—२५०६११ मेरठ (उ० प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य-सत्कार

तत्त्वार्थ सूत्र : —विवेचनकर्ता : सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री; प्रकाशक : श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन (शोध) संस्थान नरिया, वाराणसी; पृष्ठ सं० : ४६+३१४; मूल्य : ५० रु० (पुस्त० संस्करण), ३०.०० (साधारण संस्करण); संस्करण : द्वितीय १९९१; डिमाई।

तत्त्वार्थ सूत्र जैन परम्परा का सर्वमान्य ग्रन्थ है श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराएँ इसे समान रूप से मान्य करती हैं यद्यपि दोनों परम्पराओं के मूल पाठ में किञ्चित् अन्तर भी है। इस ग्रन्थ पर दोनों परम्पराओं में संस्कृत में अनेक टीकाएँ लिखी गईं। हिन्दी भाषा में श्वेताम्बर परम्परा में सर्वप्रथम पं० सुखलाल जी ने इसकी टीका लिखी थी। पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री ने दिग० परम्परा के मूलपाठ को समक्ष रखकर पं० सुखलाल जी की हिन्दी टीका को आधार बनाते हुए दिग० परम्परा की दृष्टि से तत्त्वार्थ सूत्र की यह हिन्दी विवेचना लिखी है (देखें—आत्मनिवेदन)। समालोच्य यह कृति उनके इस हिन्दी विवेचन का द्वितीय संस्करण है। पं० फूलचन्द्रजी इस ग्रन्थ की विस्तृत प्रस्तावना लिखने की भी इच्छा रखते थे किन्तु बृद्धावस्था के कारण वे इसे पूर्ण नहीं कर सके अतः प्रथम संस्करण की प्रस्तावना को लेकर ही इस द्वितीय संस्करण का प्रकाशन करना पड़ा। फिर भी यदि सर्वार्थसिद्धि की उनकी प्रस्तावना को आधार बनाकर इस प्रस्तावना को विकसित किया जाता तो यह प्रस्तावना अधिक उपयोगी बन सकती थी।

जिस प्रकार पं० सुखलाल जी का हिन्दी विवेचन ग्रन्थ के हार्द को स्पष्ट करने में अति सफल रहा है उसी प्रकार पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री का विवेचन भी दिग० परम्परा की दृष्टि से ग्रन्थ के हार्द को स्पष्ट करने में सफल माना जा सकता है। जैन परम्परा के तत्त्वज्ञान और आचार को समझने के लिए तत्त्वार्थ सूत्र अन्यतम ग्रन्थ माना जा सकता है। ग्रन्थ की प्रस्तावना में तत्त्वार्थ सूत्र और उसके भाष्य के कर्ता आदि को लेकर कुछ प्रश्न उठाये गये हैं। यद्यपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनसे सहमत होना या न होना एक भिन्न बात है किन्तु वे पण्डितजी के व्यापक अध्ययन के सूचक अवश्य ही हैं। तत्वार्थ सूत्र के कर्ता, काल, सम्प्रदाय, पाठों की प्रामाणिकता आदि को लेकर अनेक विद्वानों के विचार हमें उपलब्ध होते हैं। इन सबका सम्यक् समालोचन मैंने अपने ग्रन्थ 'यापनीय सम्प्रदाय' और तत्त्वार्थ और उसकी परम्परा में विस्तार से किया है अतः यहाँ उस समग्र चर्चा में जाना समीचीन नहीं है। इच्छुक व्यक्ति उसे वहाँ देख सकते हैं। ग्रन्थ का मुद्रण आफसेट से होने के कारण अत्यन्त नयनाभिराम है। इसके लिए वर्णी संस्थान के मंत्री डा० कमलेश कुमार विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं। यद्यपि प्रथम संस्करण में रही हुई प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर करने का प्रयास किया गया है किन्तु अब भी कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं जैसे--अविचार के स्थान पर 'अतीचार' का प्रयोग। यद्यपि दिग० परम्परामान्य मूल पाठ (७/२३) में दीर्घ 'ई' का प्रयोग हुआ है किन्तु हम देखते हैं कि दिगम्बर परम्परा के तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम टीकाकार सर्वार्थसिद्धि के लेखक पूज्यपाद देवनन्दी ने भी अपनी टीका में सर्वत्र ही ह्रस्व 'इ' का ही प्रयोग किया है और यही उचित भी है। प्रस्तुत कृति में भी पृ० २३८ पर हेडिंग के रूप में 'अतिचार' ही लिखा गया है किन्तु बाद में सर्वत्र 'अतीचार' ऐसा प्रयोग किया गया है जो उचित नहीं है। अतः भविष्य में इसे सुधार लेना चाहिए। ग्रन्थ उपयोगी और संग्रहणीय है और ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण उपलब्ध कराने के लिये प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

— डा० सागरमल जैन

कथालोक (भक्त-कथा विशेषांक) :—सम्पादक : हर्षचन्द्र; प्रकाशक : हर्षचन्द्र, ४०४, कुन्दन भवन, आजादपुर कामर्शियल कॉम्प्लेक्स, दिल्ली; पृष्ठ सं० : १३० ; आकार : डबल क्राउन; मूल्य : १० रु० : संस्करण : वर्ष २३, अंक १-२, १९९१

श्री हर्षचन्द्र जी विगत कई वर्षों से 'कथालोक' का सम्पादन एवं प्रकाशन बड़ी प्रामाणिकता से कर रहे हैं। प्रस्तुत अंक 'भक्त-कथा विशेषांक' है। इसके अन्तर्गत कालातीत भक्त, राजनीति के कालजयी भक्त, मध्य युगीन गृहस्थ भक्त, सन्त भक्त, भक्ति कहानियाँ, भक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्करण एवं विविध भक्तियां आदि विषयों को स्थान दिया गया है। उक्त विषयों के अन्तर्गत विभिन्न प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों के आलेख, संस्मरण एवं कहानियों को रखा गया है। कथाओं का संकलन बड़ी सजगता से उद्देश्य पूर्ण ढंग से किया गया है। प्रस्तुत अंक की साज-सज्जा एवं छपाई निर्दोष है। यह अंक प्रत्येक श्रद्धालु हेतु पठनीय एवं संग्रहणीय है।

डॉ० इन्द्रेशचन्द्र सिंह

शुक्ल जैन रामायण—लेखक : मुलखराज जैन, प्रकाशक : आइडियल प्रकाशन शिवपुरी, लुधियाना; आकार : डिमाई; पृ० सं० १७८, मूल्य : ५० रु०, संस्करण : प्रथम १९९०।

शुक्ल जैन रामायण प्राचीन जैन राम काव्य-परम्परा में मुनि शुक्लचन्दजी रचित हिन्दी का एक चरित काव्य है। डॉ० मुलखराज जैन ने इसका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है तथा जैनेतर रामायणों से तुलना प्रस्तुत कर जैन मान्यताओं की विशेषता को स्थापित किया है।

संस्कार—लेखक : पं० रतनचन्द भारिल्ल, प्रकाशक : पं० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए ४ बापू नगर, जयपुर; आकार : डिमाई; पृ० सं० २२४; मूल्य : सजिल्द ८ रु०, संस्करण : प्रथम १९९०।

प्रस्तुत कृति में विविध कथानकों के माध्यम से जैन सिद्धान्तों का सफल निरूपण किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें साम्प्रदायिक सद्भाव को पूरी तरह सुरक्षित रखते हुए जैन आचार और तत्त्व विचार को बहुत ही सशक्त भाषा में प्रस्तुत किया गया है। इसलिए यह कृति जैन-अजैन सभी सम्प्रदायों के लिए समान रूप से पठनीय है।

बौद्ध दोहाकोश—सम्पा० : डा० भागचन्द्र भास्कर एवं डा० पुष्पलता जैन; प्रकाशक : सन्मति रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ इण्डोलाजी, सदर, नागपुर; आकार : डिमाई, पृ० सं० : ५०; मूल्य : १०·०० रु०; संस्करण : प्रथम १९८९।

सिद्ध सरहपादकृत बौद्ध दोहाकोश (गीति) का हिन्दी अनुवाद डा० भागचन्द्र भास्कर ने बड़ी सहज शैली में प्रस्तुत किया है। इनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कृति से बौद्ध धर्म-दर्शन एवं अन्य सामाजिक मान्यताओं का सहज बोध होता है ?

कुसुम अभिनन्दन ग्रन्थ—सम्पादिका : साध्वी दिव्यप्रभा; प्रकाशक : कुसुम अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय शास्त्री सर्कल, उदयपुर; आकार : डबल क्राउन; पृष्ठ संख्या २८+५८४+४०; मूल्य : रु० १५१·००; संस्करण : प्रथम १९९० ।

साध्वी श्री कुसुमजी ने अपने साधनामय जीवन से जैन समाज की साध्वियों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है । उन्हीं की आज्ञानुवर्तिनी साध्वी श्री दिव्य प्रभाजी के कुशल नेतृत्व में 'कुसुम अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है । इस ग्रन्थ की विषय-सामग्री को सात खण्डों में विभाजित किया गया है जिसमें प्रथम खण्ड श्रद्धार्चना, द्वितीय जीवन-दर्शन, तृतीय धर्म तथा दर्शन, चतुर्थ जैन संस्कृति के विविध आयाम, पञ्चम जैन साहित्य और इतिहास, षष्ठम विविध राष्ट्रीय सन्दर्भों में जैन परम्परा की परिलब्धियाँ और सप्तम विचार मन्थन से सम्बद्ध हैं । अन्त में परिशिष्ट भी दिया हुआ है ।

ग्रन्थ सामग्री के रूप में जैन विद्या के विविध अधिकारी विद्वानों एवं साधु-साध्वियों के शोधपूर्ण लेख संकलित किए गये हैं जिनमें अनेक लेख शोध की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं । कुछ प्रूफ संशोधन सम्बन्धी त्रुटियों के अतिरिक्त ग्रन्थ-मुद्रण निर्दोष एवं कलात्मक है । ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है ।

चंदावेज्झयं (चन्द्रवेध्यक) —अनुवादक श्री सुरेश सिसोदिया; सम्पादक : प्रो० सागरमल जैन; प्रकाशक; आगम अहिंसा समता एव प्राकृत संस्थान, पद्मिनी मार्ग, उदयपुर (राज०); प्रथम संस्करण : १९९१ पृष्ठ ३९+६८; मूल्यः ३५ रुपये ।

प्रस्तुत कृति में मूल आधारित हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है । चन्द्रवेध्यक श्वेताम्बर आगम साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों में एक महत्त्वपूर्ण प्रकीर्णक ग्रन्थ है । 'चन्द्रवेध्यक' नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ में आचार के जो नियम आदि बताए गए हैं उनका पालन कर पाना चन्द्रक-वेध (राधा-वेध) के समान ही मुश्किल है । इस ग्रन्थ में सात द्वारों से सात गुणों का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार हैं -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) विनय गुण, (२) आचार्य गुण, (३) शिष्य गुण (४) विनय-निग्रह गुण (५) ज्ञान गुण (६) चारित्र गुण (७) और मरण गुण।

प्रस्तुत कृति की विशेषता यह है कि इसमें प्रारम्भ में एक विस्तृत एवं गवेषणात्मक भूमिका दी गयी है जो ग्रन्थ के विविध पक्षों को गम्भीरता पूर्वक प्रस्तुत करती है। इसमें विवेच्य ग्रन्थ की गाथाएँ अन्य आगमों में कहाँ एवं किस रूप में पायी जाती हैं --उनका विश्लेषणात्मक विवरण दिया गया है। यह भूमिका इस ग्रन्थ के सम्पादक एवं अनुवादक का संयुक्त प्रयास है।

ग्रंथ की विषयवस्तु और उसकी गाथाओं का ऐतिहासिक दृष्टि से किया गया तुलनात्मक अध्ययन ग्रन्थ को उच्च कोटि का बना देता है। सम्पादक एवं युवा अनुवादक दोनों बधाई के पात्र हैं। ग्रन्थ सर्वथा पठनीय एवं संग्रहणीय है।

नोट --उल्लेखनीय है कि आगम अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान जयपुर द्वारा प्रकीर्णक आगम ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद संस्थान के प्रवक्ता डा० सुभाष कोठारी एवं श्री सुरेश सिसोदिया द्वारा किया जा रहा है। अभी तक ४ प्रकीर्णकों --देवेन्द्रस्तव, तन्दुलवैचारिक, चन्द्रवेध्यक और महाप्रत्याख्यान का सानुवाद प्रकाशन हो चुका है। --सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण
जुलाई-दिसम्बर १९९१ रजि० नं० एल० ३९ फोन : ३११४६२

transform plastic ideas
into beautiful shape

NUCHEM MOULDS & DIES

Our high-precision moulds and dies are designed to give your moulded product clean, flawless lines. Fully tested to give instant production the moulds are made of special alloy steel, hard-chrome-plated for a better finish.

Get in touch with us for information on compression, injection or transfer moulds. Send a drawing or a sample of your design. If required we can undertake jobs right from the designing stage.

Write to :

Nuchem PLASTICS LTD.
Engineering Division 20/6, Mathura Road, Faridabad (Haryana)

Edited by Dr. Sagar Mal Jain and Published by the
Director, P. V. Research Institute, Varanasi-221005
Printed at Divine Printers, Sonarpura, Varanasi.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org